# Chapter दो

# विष्णुदूतों द्वारा अजामिल का उद्धार

इस अध्याय में वैकुण्ठ के दूत यमदूतों को भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन की महिमा बतलाते हैं। विष्णुदूतों ने कहा, ''अब तो भक्तों की सभा में भी अपवित्र कर्म किये जाते हैं, क्योंकि जो व्यक्ति दण्डनीय नहीं है, वह यमराज की सभा में दण्डित होने जा रहा है। लोग असहाय हैं और वे अपनी सुरक्षा के लिए सरकार पर निर्भर रहते हैं, किन्तु यदि सरकार इसका लाभ उठाकर नागरिकों को हानि पहुँचाती है, तो फिर वे कहाँ जायेंगे? हम अच्छी तरह देख रहे हैं कि अजामिल को दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए, यद्यपि तुम लोग इसे दण्ड देने के लिए यमराज के पास लिए जाने का प्रयास कर रहे हो।''

अजामिल अपने द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम की महिमा के गायन से ही अदण्डनीय हो गया था। विष्णुदूतों ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की: ''यह ब्राह्मण मात्र एक बार नारायण का नाम उच्चारण करने से पापी जीवन के फलों से मुक्त हो गया है। यह न केवल इस जन्म के पापों से मुक्त हो गया है, अपितु कई हजारों अन्य जीवनों के पापों से भी मुक्त हो गया है। उसने पहले ही अपने पाप-कर्मों का प्रायश्चित्त कर लिया है, जो कोई शास्त्रों के निर्देशानुसार प्रायश्चित्त करता है,

वह वस्तुत: पापकर्मों के फलों से मुक्त नहीं होता, किन्तु यदि वह भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, तो ऐसे कीर्तन की एक परछाई मात्र से वह सारे पापों से तुरन्त मुक्त हो जाता है। भगवान् के नाम की महिमा का कीर्तन सारे सौभाग्य का उदय कराता है। अतएव इसमें संदेह नहीं है कि सारे पापकर्मों के फलों से पूर्णतया मुक्त होने के कारण अजामिल को यमराज द्वारा दण्ड नहीं मिलना चाहिए।''

जब वे यह कह रहे थे तो विष्णुदूतों ने अजामिल को यमदूतों के पाश से छुड़ा दिया और वे अपने धाम को चले गये। किन्तु ब्राह्मण अजामिल ने विष्णुदूतों को सादर नमस्कार किया। तब उसकी समझ में आया कि वह कितना भाग्यशाली था कि उसने अपने जीवन के अन्त में नारायण के नाम का उच्चारण किया। निस्सन्देह वह अपने सौभाग्य का पूर्ण महत्त्व अनुभव कर सका। यमदूतों तथा विष्णुदूतों के बीच हुए वाद-विवाद को भलीभाँति समझने के बाद वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का शुद्ध भक्त बन गया। उसने अत्यधिक पश्चात्ताप किया कि वह कितना बड़ा पापी था और बारम्बार अपने को कोसा।

अन्तत: विष्णुदूतों की संगति से अपनी मूल चेतना के जाग्रत हो जाने पर अजामिल ने सर्वस्व त्याग दिया और हरिद्वार चला गया जहाँ वह अविचल भाव से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन करते हुए भक्ति में लग गया। तब विष्णुदूत वहाँ पहुँचे और उन्होंने उसे सोने के सिंहासन पर बैठाया और फिर उसे वैकुण्ठलोक ले गये।

संक्षेप में, यद्यपि पापी अजामिल अपने पुत्र को पुकारता था, किन्तु नारायण का पवित्र नाम, प्रारम्भिक अवस्था (नामाभास) में उच्चारण किये जाने पर भी, उसे मुक्ति दिला सका। इसलिए जो व्यक्ति श्रद्धा तथा भक्ति से भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करता है, वह निश्चित रूप से महान् है और उसकी रक्षा उसके भौतिक बद्ध जीवन में भी की जाती है।

**श्रीबादरायणिरुवाच**

**एवं ते भगवद्भूता यमदूताभिभाषितम् ।**
**उपधार्याथ तान्राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥ १ ॥**

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; ते—वे; भगवत्-दूताः—भगवान् विष्णु के सेवक; यमदूत—यमराज के सेवकों द्वारा; अभिभाषितम्—कहा गया; उपधार्य—सुनकर; अथ—तब; तान्—उनसे; राजन्—हे राजन्; प्रत्याहुः—ठीक से उत्तर दिया; नय-कोविदाः—उत्तम नीति में पटु होने से।

**शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्! भगवान् विष्णु के दूत नीति तथा तर्कशास्त्र में अति पटु होते हैं। यमदूतों के कथनों को सुनने के बाद उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया।**

श्रीविष्णुदूता ऊचुः
**अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ।**
**यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥ २ ॥**

शब्दार्थ

श्री-विष्णुदूताः ऊचुः—विष्णुदूतों ने कहा; अहो—हाय; कष्टम्—कितना दुखदायी है; धर्म-दृशाम्—धर्मपालन करने में रुचि लेने वाले पुरुषों को; अधर्मः—अधर्म; स्पृशते—प्रभावित कर रहा है; सभाम्—सभा को; यत्र—जिसमें; अदण्ड्येषु—न दण्डित होने वाले पुरुषों पर; अपापेषु—पापरहित; दण्डः—दण्ड; यैः—जिनके द्वारा; ध्रियते—निर्धारित किया जाता है; वृथा—व्यर्थ ही।

**विष्णुदूतों ने कहा : हाय! यह कितना दुःखद है कि ऐसी सभा में जहाँ धर्म का पालन होना चाहिए, वहाँ अधर्म को लाया जा रहा है। दरअसल, धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करने के अधिकारी जन एक निष्पाप एवं अदण्डनीय व्यक्ति को व्यर्थ ही दण्ड दे रहे हैं।**

**तात्पर्य :** विष्णुदूतों ने यमदूतों पर आरोप लगाया कि वे दण्ड देने के लिए अजामिल को यमराज के पास घसीट कर ले जाने का प्रयास करके धार्मिक सिद्धान्तों का उल्लंघन कर रहे हैं। यमराज वह अधिकारी है, जिसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने धार्मिक तथा अधार्मिक सिद्धान्तों का निर्णय करने तथा अधार्मिक लोगों को दण्ड देने के लिए नियुक्त किया है। किन्तु यदि पूर्णतया निष्पाप लोग दण्डित होते हैं, तो यमराज की पूरी सभा दूषित होती है। यह नियम न केवल यमराज की सभा पर लागू होता है, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज पर भी लागू होता है।

मानव-समाज में धार्मिक सिद्धान्तों का सही ढंग से पालन करना राजन् के दरबार का या सरकार का कर्तव्य है। दुर्भाग्यवश इस कलियुग में धार्मिक सिद्धान्तों में हस्तक्षेप किया जाता है

और सरकार यह ठीक से निर्णय नहीं ले पाती कि कौन दण्डनीय है और कौन नहीं। कहा जाता है कि कलियुग में यदि न्यायालय में धन नहीं व्यय किया जाये तो न्याय नहीं मिल पाता। निस्सन्देह न्यायालयों में प्राय: पाया जाता है कि अनुकूल निर्णयों के लिए मैजिस्ट्रेटों को रिश्वत दी जाती है। कभी-कभी कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का प्रचार करने वाले धार्मिक लोगों को बन्दी बनाकर पुलिस तथा न्यायालयों द्वारा सताया जाता है, जो सम्पूर्ण जनता के लाभार्थ कार्य करते हैं। विष्णुदूत, जो कि वैष्णव थे, इन्हीं शोचनीय तथ्यों के लिए शोक कर रहे थे। वैष्णवजन समस्त पतितात्माओं के प्रति अपनी आध्यात्मिक करुणा के कारण धार्मिक सिद्धान्तों की मानक विधि के अनुसार प्रचार करने बाहर जाते हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश, कलियुग के प्रभाव से जिन वैष्णवों ने भगवान् की महिमा का प्रचार करने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है वे कभी-कभी सताये जाते हैं और शान्ति भंग करने के झूठे आरोपों पर न्यायालयों द्वारा दण्डित किये जाते हैं।

**प्रजानां पितरो ये च शास्तार: साधव: समा: ।**
**यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजा: ॥ ३ ॥**

### शब्दार्थ

प्रजानाम्—नागरिकों के; पितर:—रक्षक, अभिभावक ( राजा या सरकारी नौकर ); ये—जो; च—तथा; शास्तार:—कानून तथा व्यवस्था का आदेश देने वाले; साधव:—समस्त सद्गुणों से युक्त; समा:—हर एक के तुल्य; यदि—यदि; स्यात्—है; तेषु—उनमें से; वैषम्यम्—पक्षपात; कम्—किसकी; यान्ति—जायेंगे; शरणम्—शरण में; प्रजा:—नागरिक।

**राजा या सरकारी शासक को इतना सुयोग्य होना चाहिए कि वह स्नेह और प्रेम के साथ नागरिकों के पिता, पालक तथा संरक्षक के रूप में कार्य कर सके। उसे मानक शास्त्रों के अनुसार नागरिकों को अच्छी सलाह तथा आदेश देने चाहिए और हर एक के प्रति समभाव रखना चाहिए। यमराज ऐसा करता है, क्योंकि वह न्याय का परम स्वामी है और उसके पदचिन्हों पर चलने वाले भी वैसा ही करते हैं, किन्तु यदि ऐसे लोग दूषित हो जायँ और निर्दोष तथा अबोध व्यक्ति को दण्डित करके पक्षपात प्रदर्शित करें तो फिर सारे नागरिक अपने भरण-पोषण तथा सुरक्षा के लिए शरण लेने हेतु कहाँ जायेंगे?**

**तात्पर्य :** राजा अथवा आधुनिक काल में सरकार को चाहिए कि नागरिकों को जीवन के सही लक्ष्य की शिक्षा देकर उनके अभिभावक के रूप में कार्य करे। यह मनुष्य-जीवन विशेषतया स्वयं को तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध की अनुभूति के निमित्त है, क्योंकि पशु-जीवन में इसकी अनुभूति नहीं की जा सकती। इसलिए सरकार का कर्तव्य है कि वह सारे नागरिकों को प्रशिक्षण देने का भार अपने ऊपर इस तरह से ले कि धीरे-धीरे वे आध्यात्मिक पद तक उठ सकें और आत्मा तथा ईश्वर से अपने सम्बन्ध की अनुभूति कर सकें। इस सिद्धान्त का पालन महाराज युधिष्ठिर, महाराज परीक्षित, श्रीरामचन्द्र, महाराज अम्बरीष तथा प्रह्लाद महाराज ने किया। सरकार के नेताओं को अत्यन्त ईमानदार तथा धार्मिक होना चाहिए, अन्यथा राज्य के सारे कामकाज बाधित होंगे। दुर्भाग्यवश, प्रजातंत्र के नाम पर चोर-उचक्के अन्य चोर-उचक्कों को ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सरकारी पदों के लिए चुन रहे हैं। हाल ही में अमेरिका में यह सिद्ध हो चुका है जहाँ राष्ट्रपति को निन्दित होना पड़ा तथा नागरिकों द्वारा उसे अपने पद से नीचे उतार देना पड़ा। यह कोई अकेला मामला नहीं है, बल्कि ऐसे अनेक मामले हैं। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन की महत्ता के कारण लोगों को कृष्णभावनाभावित होना चाहिए और ऐसे किसी व्यक्ति को वोट नहीं देना चाहिए जो कृष्णभावनाभावित न हो। राज्य में तब वास्तविक शान्ति और समृद्धि होगी, जब कोई भी वैष्णव सरकार में कुव्यवस्था देखता है, तो उसके हृदय में अपार करुणा उमड़ती है और वह अपने बल पर हरे कृष्ण आन्दोलन का विस्तार करके स्थिति को शुद्ध बनाने का प्रयास करता है।

**यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ।**
**स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४॥**

### शब्दार्थ

यत् यत्—जो जो; आचरति—सम्पन्न करता है; श्रेयान्—धार्मिक सिद्धान्तों की पूरी जानकारी से युक्त उच्चकोटि का व्यक्ति; इतरः—अधीन व्यक्ति; तत् तत्—वही वही; ईहते—करता है; सः—वह ( महापुरुष ); यत्—जो जो; प्रमाणम्—

प्रमाण या सही बात के रूप में; कुरुते—स्वीकार करती है; लोकः—आम जनता; तत्—वही; अनुवर्तते—अनुसरण करती है।

**आम जनता समाज में नेता के उदाहरण का अनुगमन और उसके आचरण का अनुसरण करती है। नेता जो भी मानता है उसे आप जनता प्रमाण रूप में स्वीकार करती है।**

**तात्पर्य :** यद्यपि अजामिल दण्डनीय नहीं था, फिर भी यमदूत उसे दण्ड देने के लिए यमराज के पास ले जाने की जिद्द कर रहे थे। यह *अधर्म* था अर्थात् धार्मिक सिद्धान्तों के विपरीत था। विष्णुदूतों को भय था कि यदि ऐसे अधार्मिक कार्यों की अनुमति दी जाती है, तो मानव-समाज की व्यवस्था बिगड़ जायेगी। आधुनिक काल में, कृष्णभावनामृत-आन्दोलन मानव-समाज की व्यवस्था के सही सिद्धान्त को चालू कर रहा है, किन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि कलियुग की सरकारें हरे कृष्ण आन्दोलन का समुचित रूप से समर्थन नहीं करतीं, क्योंकि वे इस आन्दोलन की मूल्यवान सेवाओं को समझ नहीं पा रहीं। हरे कृष्ण आन्दोलन मानव-समाज की पतित अवस्था को सुधारने के लिए सही आन्दोलन है, इसलिए सरकारों तथा विश्व के प्रत्येक भाग के जन-नेताओं को मानवता की पापपूर्ण स्थिति को पूरी तरह से संशोधित करने में अपना समर्थन देना चाहिए।

**यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ।**
**स्वयं धर्ममधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥ ५ ॥**
**स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ।**
**विस्रम्भणीयो भूतानां सघृणो दोग्धुमर्हति ॥ ६ ॥**

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अङ्के—गोद में; शिरः—सिर; आधाय—रखकर; लोकः—आम जनता; स्वपिति—सोती है; निर्वृतः—शान्ति से; स्वयम्—स्वयं; धर्मम्—धार्मिक सिद्धान्त या जीवन-लक्ष्य; अधर्मम्—अधार्मिक सिद्धान्त; वा—अथवा; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; वेद—जानते हैं; यथा—जिस तरह; पशुः—पशु; सः—ऐसा व्यक्ति; कथम्—कैसे; न्यर्पित-आत्मानम्—उस जीव के प्रति जिसने पूर्णतया आत्मसमर्पण कर दिया है; कृत-मैत्रम्—श्रद्धा तथा मैत्री से समन्वित; अचेतनम्—अविकसित चेतना वाला, मूर्ख; विस्रम्भणीयः—श्रद्धा का विषय बनने के योग्य; भूतानाम्—जीवों का; स-घृणः—सारे लोगों के कल्याण हेतु मृदु हृदय रखने वाला; दोग्धुम्—कष्ट देने के लिए; अर्हति—समर्थ है।

**सामान्य लोग ज्ञान में इतने उन्नत होते है कि धर्म तथा अधर्म में भेदभाव कर सकें।**

**अबोध, अप्रबुद्ध नागरिक उस अज्ञानी पशु की तरह है, जो अपने स्वामी की गोद में सिर रख कर शान्तिपूर्वक सोता रहता है और श्रद्धापूर्वक अपने स्वामी द्वारा अपने संरक्षण पर विश्वास करता है। यदि नेता वास्तव में दयालु हो तथा जीव की श्रद्धा का भाजन बनने योग्य हो तो वह किसी मूर्ख व्यक्ति को किस तरह दण्ड दे सकता है या जान से मार सकता है, जिसने श्रद्धा तथा मैत्री में पूर्णतया आत्मसमर्पण कर दिया हो?**

**तात्पर्य :** श्रद्धा या विश्वास को तोड़ने वाले को संस्कृत में *विश्वस्त-घात* द्योतित करता है। जनसमूह को सदैव इसलिए सुरक्षित अनुभव करना चाहिए, क्योंकि उसे सरकारी सुरक्षा प्राप्त रहती है। अतएव कितना खेदजनक है यदि सरकार स्वयं विश्वासघात करे और नागरिकों को राजनीतिक कारणों से कठिनाई में डाल दे। हमने भारत के विभाजन के दिनों में वास्तव में देखा कि यद्यपि हिन्दू तथा मुसलमान शान्तिपूर्वक साथ-साथ रह रहे थे, किन्तु राजनीतिज्ञों के छलकपट से उनके बीच सहसा घृणा की भावना उत्पन्न हो गई और हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने राजनीति के कारण एक दूसरे की हत्या कर दी। यह कलियुग का लक्षण है। इस युग में पशुओं को ठीक से आश्रय दिया जाता है और उन्हें पूर्ण विश्वास रहता है कि उनके मालिक उनकी रक्षा करेंगे, किन्तु दुर्भाग्यवश ज्योंही वे तगड़े (मोटे) हो जाते हैं, उन्हें तुरन्त वध के लिए कसाईखाने भेज दिया जाता है। विष्णुदूत जैसे वैष्णव ऐसी क्रूरता की निन्दा करते हैं। दरअसल, जिन नारकीय दशाओं का पहले वर्णन हो चुका है, वे ऐसी यातना देने वाले पापी मनुष्यों की प्रतीक्षा करती रहती हैं। जो मनुष्य किसी जीव के साथ चाहे यह जीव मनुष्य हो या पशु, विश्वासघात करता है, जिसने अच्छे भाव से उसकी शरण ले रखी है, वह अतीव पापी है। चूँकि अब ऐसे विश्वासघात सरकार द्वारा अदण्डित रहते हैं इसलिए पूरा मानव-समाज बुरी तरह से दूषित है। इसलिए इस युग के लोगों को *मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः।* ऐसी पापमयता के फलस्वरूप लोग निन्दित होते हैं (*मन्दाः*) उनकी बुद्धि विमल नहीं रहती (*सुमन्दमतयः*) वे अभागे होते हैं (*मन्दभाग्याः*), अतएव वे अनेक समस्याओं द्वारा सदैव उद्विग्न रहते हैं (*उपद्रुताः*)। यह तो इस जीवन में उनकी स्थिति है

और मृत्यु के बाद उन्हें नारकीय दण्ड दिया जाता है।

**अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ।**
**यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥ ७॥**

शब्दार्थ

अयम्—यह व्यक्ति ( अजामिल ); हि—निस्सन्देह; कृत-निर्वेशः—सभी तरह के प्रायश्चित्त किये हैं; जन्म—जन्मों का; कोटि—करोड़ों; अंहसाम्—पापकर्मों के लिए; अपि—भी; यत्—क्योंकि; व्याजहार—उच्चारण किया है; विवशः—असहाय अवस्था में; नाम—पवित्र नाम; स्वस्ति-अयनम्—मोक्ष का साधन; हरेः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के।

**अजामिल पहले ही अपने सारे पापकर्मों के लिए प्रायश्चित्त कर चुका है। दरअसल, उसने न केवल एक जीवन में किये गये पापों का प्रायश्चित्त किया है, अपितु करोड़ों जीवनों में किये गये पापों के लिए किया है, क्योंकि उसने असहाय अवस्था में नारायण-नाम का उच्चारण किया है। यद्यपि उसने शुद्धरीति से यह उच्चारण नहीं किया, किन्तु उसने अपराधरहित उच्चारण किया है इसलिए अब वह पवित्र है और मोक्ष का पात्र है।**

**तात्पर्य :** यमदूतों ने अजामिल की केवल बाह्य स्थिति पर ही विचार किया था। चूँकि वह आजीवन अत्यधिक पापी था, अत: उन्होंने सोचा कि उसे यमराज के पास ले चलना चाहिए। वे यह नहीं जानते थे कि वह अपने समस्त पापों के फलों से मुक्त हो चुका था। इसलिए विष्णुदूतों ने आदेश दिया कि चूँकि उसने मृत्यु के समय नारायण नाम के चार अक्षरों का उच्चारण किया था, अत: वह सारे पापफलों से मुक्त कर दिया गया था। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *स्मृति शास्त्र* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

*नाम्नो हि यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।*

*तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी नरः॥*

''हरि का एक पवित्र नाम लेने मात्र से पापी मनुष्य जितने पाप कर सकता है उससे अधिक पापों के फलों का निराकरण कर सकता है।'' ( *बृहद्विष्णु पुराण*)।

*अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।*

*पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥*

''यदि कोई असहायअवस्था में या अनिच्छा से ही क्यों न हों भगवन्नाम का उच्चारण करे तो उसके पापमय जीवन के सारे फल उसी तरह मिट जाते हैं जिस तरह सिंह की दहाड़ से सारे छोटे-छोटे पशु डर कर भग जाते हैं।'' ( *गरूड़ पुराण*)

*सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।*

*बद्धपरिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥*

''हरि के दो अक्षरों *ह* तथा *रि* के एक बार उच्चारण करने से मनुष्य का मोक्ष का मार्ग सुनिश्चित हो जाता है।''( *स्कन्द पुराण*)

ये कुछ कारण हैं जिससे विष्णुदूतों ने यमदूतों को अजामिल को यमराज के न्यायालय में ले जाने से मना किया।

**एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ।**
**यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥ ८ ॥**

शब्दार्थ

एतेन—इस ( कीर्तन ) से; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; अघोनः—पापपूर्ण फलों वाला; अस्य—इस ( अजामिल ) का; कृतम्—किया हुआ; स्यात्—है; अघ—पापों का; निष्कृतम्—पूर्ण प्रायश्चित्त; यदा—जब; नारायण—हे नारायण ( उसके पुत्र का नाम ); आय—कृपया आइये; इति—इस प्रकार; जगाद—उच्चारण किया; चतुः-अक्षरम्—चार अक्षर ( ना-रा-य-ण )।

**विष्णुदूतों ने आगे कहा : यहाँ तक कि पहले भी, खाते समय तथा अन्य अवसरों पर यह अजामिल अपने पुत्र को यह कहकर पुकारा करता, ''प्रिय नारायण! यहाँ तो आओ।'' यद्यपि वह अपने पुत्र का नाम पुकारता था, फिर भी वह ना, रा, य तथा ण इन चार अक्षरों का उच्चारण करता था। इस प्रकार केवल नारायण नाम का उच्चारण करने से उसने लाखों जन्मों के पापपूर्ण फलों के लिए पर्याप्त प्रायश्चित्त कर लिए हैं।**

**तात्पर्य :** पहले जब अजामिल अपने परिवार के पालन हेतु पापकर्मों में लगा रहता तो वह नारायण का नाम निरपराध होकर लेता था। केवल अपने पापकर्मों के निवारणार्थ भगवान् के पवित्र

नाम का कीर्तन करना या पवित्र नाम के कीर्तन के बल पर पापकर्म करना अपराधमय है ( *नाम्नो बलादस्य हि पाप बुद्धिः*)। यद्यपि अजामिल पापकर्मों में लगा रहता था, किन्तु इनके निवारणार्थ उसने कभी नारायण के पवित्र नाम का कीर्तन नहीं किया। वह अपने पुत्र को बुलाने के लिए नारायण का नाम लिया करता था। इसलिए उसका कीर्तन प्रभावोत्पादक था। इस तरह से नारायण के पवित्र नाम का कीर्तन करने से वह अनेकानेक जीवनों के संचित पापमय फलों को पहले ही विनष्ट कर चुका था। प्रारम्भ में वह पवित्र था, किन्तु बाद में चाहे उसने अनेक पापकर्म किये; फिर भी वह अपराधरहित था, क्योंकि उसने उनके निवारणार्थ कभी नारायण के पवित्र नाम का कीर्तन नहीं किया था। जो व्यक्ति बिना अपराध के भगवन्नाम का सदैव कीर्तन करता है, वह सदैव पवित्र रहता है। जैसाकि इस श्लोक में पुष्टि हुई है अजामिल पहले से निष्पाप था और चूँकि वह नारायण के नाम का उच्चारण करता था, अतएव वह निष्पाप बना रहा। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा कि वह अपने पुत्र को बुलाता था। नाम स्वयं में प्रभावकारी था।

**स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।**
**स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥**
**सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।**
**नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥**

शब्दार्थ

स्तेनः—चुराने वाला; सुरा-पः—शराबी; मित्र-ध्रुक्—अपने मित्र या सम्बन्धी का विरोधी; ब्रह्म-हा—ब्राह्मण का वध करने वाला; गुरु-तल्प-गः—अपने गुरु की पत्नी के साथ संभोग करने वाला; स्त्री—स्त्रियाँ; राज—राजा; पितृ—पिता; गो—गौवों का; हन्ता—हत्यारा; ये—जो; च—भी; पातकिनः—पापकर्मे किए; अपरे—अन्य सारे; सर्वेषाम्—उन सबका; अपि—भी; अघ-वताम्—अनेक पाप कर चुके व्यक्ति; इदम्—यह; एव—निश्चय ही; सु-निष्कृतम्—पूर्ण प्रायश्चित्त; नाम-व्याहरणम्—नाम का कीर्तन; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; यतः—जिससे; तत्-विषया—पवित्र नाम का उच्चारण करने वाले पर; मतिः—उनका ध्यान।

**भगवान् विष्णु के नाम का कीर्तन सोना या अन्य मूल्यवान वस्तुओं के चोर, शराबी, मित्र या सम्बन्धी के साथ विश्वासघात करने वाले, ब्राह्मण के हत्यारे अथवा अपने गुरु अथवा अन्य श्रेष्ठजन की पत्नी के साथ संभोग करने वाले के लिए प्रायश्चित्त की सर्वोत्तम**

**विधि है। स्त्रियों, राजा या अपने पिता के हत्यारे, गौवों का वध करने वाले तथा अन्य सारे पापी लोगों के लिए भी प्रायश्चित्त की यही सर्वोत्तम विधि है। भगवान् विष्णु के पवित्र नाम का केवल कीर्तन करने से ऐसे पापी व्यक्ति भगवान् का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं और वे इसीलिए विचार करते हैं** कि, **''इस व्यक्ति ने मेरे नाम का उच्चारण किया है, इसलिए मेरा कर्तव्य है कि उसे सुरक्षा प्रदान करूँ।''**

**न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-**
**स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान्व्रतादिभिः ।**
**यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-**
**स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥ ११ ॥**

शब्दार्थ

न—नहीं; निष्कृतैः—प्रायश्चित्त की विधियों द्वारा; उदितैः—निर्धारित; ब्रह्म-वादिभिः—मनु जैसे विद्वान पंडितों द्वारा; तथा—उस सीमा तक; विशुद्ध्यति—शुद्ध हो जाता है; अघ-वान्—पापी व्यक्ति; व्रत-आदिभिः—व्रत तथा अन्य अनुष्ठानों का पालन करने से; यथा—जिस तरह; हरेः—भगवान् हरि का; नाम-पदैः—नाम के अक्षरों से; उदाहृतैः—उच्चरित; तत्—वह; उत्तमश्लोक—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; गुण—दिव्य गुणों का; उपलम्भकम्—किसी को स्मरण दिलाते हुए।

**वैदिक कर्मकाण्डों का पालन करने अथवा प्रायश्चित्त करने से पापी लोग उस तरह से शुद्ध नहीं हो पाते जिस तरह एक बार भगवान् हरि के पवित्र नाम का कीर्तन करने से शुद्ध बनते हैं। यद्यपि आनुष्ठानिक प्रायश्चित्त मनुष्य को पापफलों से मुक्त कर सकता है, किन्तु यह भक्ति को जाग्रत नहीं करता जिस तरह परम भगवान् के नाम का कीर्तन मनुष्य को भगवान् के यश, गुण, लक्षण, लीलाओं तथा साज-सामग्री का स्मरण कराता है।**

**तात्पर्य :** श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि भगवान् के कीर्तन का विशेष महत्त्व है, जो कठोर, कठोरतर या कठोरतम पापकर्मों के प्रायश्चित्त के वैदिक कर्मकाण्डों से इसे पृथक् करने वाला है। बीस प्रकार के धार्मिक वाङ्मय हैं, जो धर्मशास्त्र कहलाते हैं यथा *मनुसंहिता, पराशरसंहिता* इत्यादि, किन्तु यहाँ पर इस पर बल दिया गया है कि यद्यपि मनुष्य इन शास्त्रों के धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करने से सर्वाधिक पापकर्मों के फलों से मुक्त हो सकता है, किन्तु

इनसे पापी व्यक्ति भगवान् की प्रेमाभक्ति की अवस्था तक नहीं पहुँच सकता। दूसरी ओर भगवन्नाम का एक बार भी कीर्तन करने से मनुष्य न केवल बड़े से बड़े पापों के फलों से तुरन्त मुक्त हो जाता है, अपितु यह कीर्तन उसे उत्तमश्लोक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रेमाभक्ति करने के पद तक उठाता है। इस तरह मनुष्य भगवान् के स्वरूप, गुण तथा लीलाओं का स्मरण करके उनकी सेवा करता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि यह सब एकमात्र भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने से सम्भव है, क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान हैं। जिसे वैदिक कर्म-काण्डों को सम्पन्न करके प्राप्त नहीं किया जा सकता उसे भगवान् के पवित्र नाम के जप से सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। पवित्र नाम का कीर्तन करने और भावविभोर होकर नाचने की विधि इतनी सरल तथा भव्य है कि एकमात्र इसी का पालन करने से मनुष्य आध्यात्मिक जीवन के सारे लाभ प्राप्त कर सकता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु घोषित करते हैं—*परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्*—श्रीकृष्ण *सङ्कीर्तन* की जय हो! हमने जो संकीर्तन आन्दोलन चलाया है, वह समस्त पापफलों से शुद्ध होने तथा तुरन्त ही आध्यात्मिक जीवन के पद को प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि प्रदान करता है।

**नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते**
**मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।**
**तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-**
**र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥ १२ ॥**

शब्दार्थ

न—नहीं; ऐकान्तिकम्—पूरी तरह स्वच्छ किया हुआ; तत्—हृदय; हि—क्योंकि; कृते—अत्यन्त सुन्दर ढंग से सम्पन्न; अपि—यद्यपि; निष्कृते—प्रायश्चित्त; मनः—मन; पुनः—फिर; धावति—दौड़ता है; चेत्—यदि; असत्-पथे—भौतिक कार्यों के मार्ग पर; तत्—इसलिए; कर्म-निर्हारम्—भौतिक कर्मों के सकाम फलों का अन्त; अभीप्सताम्—उनके लिए जो गम्भीरतापूर्वक चाहते हैं; हरेः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; गुण-अनुवादः—महिमा का निरन्तर कीर्तन; खलु—निस्सन्देह; सत्त्व-भावनः—वास्तव में जीवन को शुद्ध करने वाला।

**धार्मिक शास्त्रों में संस्तुत किये गये प्रायश्चित्त के कर्मकाण्ड हृदय को पूरी तरह स्वच्छ बनाने में अपर्याप्त होते हैं, क्योंकि प्रायश्चित्त के बाद मनुष्य का मन पुनः भौतिक कर्मों की**

**ओर दौड़ता है। फलस्वरूप, जो व्यक्ति भौतिक कार्यों के सकाम फलों से मुक्ति चाहता है, उसके लिए हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन या भगवान् के नाम, यश तथा लीलाओं की महिमा का गायन प्रायश्चित्त की सबसे पूर्ण विधि के रूप में संस्तुत किया जाता है, क्योंकि ऐसे कीर्तन से मनुष्य के हृदय में संचित धूल स्वच्छ हो जाती है।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक के कथनों की पुष्टि पहले ही *श्रीमद्भागवत* (१.२.१७) में हो चुकी है—

*शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्य श्रवणकीर्तनः।*

*हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्।*

''भगवान् कृष्ण, जो कि प्रत्येक के हृदय में परमात्मा हैं और सच्चे भक्त के उपकारी हैं उस भक्त के हृदय से भौतिक भोग की इच्छा को धो डालते हैं, जो उनके सन्देशों का आस्वादन करता है, जो ठीक से सुने जाने तथा कीर्तन किये जाने पर स्वयं में शुभ गुणों से अलंकृत (पवित्र) हैं।'' यह तो परम भगवान् की विशेष कृपा होती है कि ज्योंही वे यह जान जाते हैं कि कोई उनके नाम, यश तथा गुणों का महिमागान कर रहा है, तो वे स्वयं उसके हृदय की धूल को हटाने में सहायता करते हैं। इसलिए मात्र ऐसे गुणानुवाद से मनुष्य न केवल शुद्ध बनता है, अपितु पुण्यकर्मों का फल भी प्राप्त करता है। (*पुण्यश्रवणकीर्तन*)। *पुण्यश्रवणणकीर्तन भक्ति* का द्योतक है। यदि कोई भगवान् के नाम, लीलाओं या गुणों को न भी समझता हो तो वह मात्र उनके श्रवण या कीर्तन से शुद्ध हो जाता है। ऐसी शुद्धि *सत्त्व-भावन* कहलाती है।

मनुष्य का मुख्य उद्देश्य अपने जीवन को शुद्ध बनाना तथा मुक्ति प्राप्त करना होना चाहिए। जब तक मनुष्य का भौतिक शरीर रहता है, वह अशुद्ध समझा जाता है। ऐसी अशुद्ध भौतिक दशा में मनुष्य वास्तविक आनन्दमय जीवन का भोग नहीं कर सकता, यद्यपि हर कोई उसकी खोज में है। इसीलिए *श्रीमद्भागवत* (५.५.१) में कहा गया है—*तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येत*—मनुष्य को अपने जीवन को शुद्ध करने हेतु *तपस्या* करनी चाहिए ताकि वह आध्यात्मिक पद तक

आ सके। भगवान् के नाम, यश तथा गुणों के कीर्तन तथा गुणानुवाद की *तपस्या* अत्यन्त सरल शुद्धकारी विधि है, जिससे हर एक सुखी बन सकता है। अत: हर व्यक्ति को जो अपने हृदय को स्वच्छ बनाना चाहता है यह विधि ग्रहण करनी चाहिए। अन्य विधियाँ, यथा कर्म, ज्ञान तथा योग हृदय को पूरी तरह स्वच्छ नहीं बना सकतीं।

**अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ।**
**यदसौ भगवन्नाम म्रियमाण: समग्रहीत् ॥ १३ ॥**

शब्दार्थ

अथ—इसलिए; एनम्—उसको ( अजामिल को ); मा—मत; अपनयत—ले जाने का प्रयास करो; कृत—पहले किया हुआ; अशेष—असीम; अघ-निष्कृतम्—उसके पापकर्मों के लिए प्रायश्चित्त; यत्—क्योंकि; असौ—उसने; भगवत्-नाम—भगवान् का पवित्र नाम; म्रियमाण:—मरते समय; समग्रहीत्—पूर्णरूपेण उच्चारण किया।

**इस अजामिल ने मृत्यु के समय असहाय होकर तथा अत्यन्त जोर-जोर से भगवान् नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया है। एकमात्र उसी उच्चारण ने पूरे पापमय जीवन के फलों से उसे पहले ही मुक्त कर दिया है। इसलिए हे यमराज के सेवको! तुम उसे नारकीय दशाओं में दण्ड देने के लिए अपने स्वामी के पास ले जाने का प्रयास मत करो।**

**तात्पर्य :** विष्णुदूतों ने श्रेष्ठ अधिकारी होने के नाते यमदूतों को आदेश दिया जो यह नहीं जानते थे कि अजामिल को अब उसके विगत पापों के लिए नारकीय जीवन में यातना नहीं दी जानी है। यद्यपि उसने अपने पुत्र के सम्बन्ध में नारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया था, किन्तु पवित्र नाम दिव्य रूप से इतना शक्तिशाली है कि अजामिल स्वत: मुक्त कर दिया गया, क्योंकि उसने मरते समय पवित्र नाम का उच्चारण किया था। (अन्ते नारायण स्मृत:) *भगवद्गीता* (७.२८) में कृष्ण पुष्टि करते हैं—

*येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।*
*ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रता: ॥*

''जिन मनुष्यों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं और जिनके पापकर्मों का

पूर्णतया उच्छेदन हो चुका है और जो मोह के द्वन्द्वों से मुक्त हो चुके हैं, तब वे संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में तत्पर होते हैं।'' जब तक कोई सारे पापकर्मों से मुक्त नहीं हो जाता, वह भक्ति के पद तक नहीं उठ सकता। *भगवद्गीता* में अन्यत्र (८.५) कहा गया है—

*अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।*

*यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥*

यदि कोई मृत्यु के समय कृष्ण या नारायण का स्मरण करता है, तो वह निश्चित रूप से तुरन्त ही घर वापस जाने अर्थात् भगवद्धाम जाने का पात्र बन जाता है।

**साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।**
**वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १४॥**

शब्दार्थ

साङ्केत्यम्—संकेत के रूप में; पारिहास्यम्—हँसी मजाक में; वा—अथवा; स्तोभम्—संगीतमय मनोरंजन में; हेलनम्—उपेक्षा भाव से; एव—निश्चय ही; वा—अथवा; वैकुण्ठ—भगवान् का; नाम-ग्रहणम्—पवित्रनाम का कीर्तन; अशेष—असीम; अघ-हरम्—पापमय जीवन के प्रभाव को दूर करने वाला; विदुः—उन्नत योगी जानते हैं।

**जो व्यक्ति भगवन्नाम का कीर्तन करता है उसे तुरन्त अनगिनत पापों के फलों से मुक्त कर दिया जाता है। भले ही उसने यह कीर्तन अप्रत्यक्ष रूप में (कुछ अन्य संकेत करने के लिए), परिहास में, संगीतमय मनोरंजन के लिए अथवा उपेक्षा भाव से क्यों न किया हो। इसे शास्त्रों में पारंगत सभी विद्वान पंडित स्वीकार करते हैं।**

**पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः ।**
**हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाः ॥ १५॥**

शब्दार्थ

पतितः—गिरा हुआ; स्खलितः—फिसला हुआ; भग्नः—टूटी हड्डियों वाला; सन्दष्टः—काटा हुआ; तप्तः—ज्वर या ऐसी ही पीड़ादायक स्थिति से बुरी तरह आक्रान्त; आहतः—चोट खाया; हरिः—भगवान् कृष्ण; इति—इस प्रकार; अवशेन—अकस्मात्; आह—कीर्तन करता है; पुमान्—मनुष्य; न—नहीं; अर्हति—योग्य है; यातनाः—नारकीय दशाएँ।

**यदि कोई हरिनाम का उच्चार करता है और तभी किसी आकस्मिक दुर्भाग्य से यथा छत से गिरने, फिसलने या सड़क पर यात्रा करते समय हड्डी टूट जाने, सर्प द्वारा काटे जाने,**

**पीड़ा तथा तेज ज्वर से आक्रान्त होने या हथियार से घायल होने से, मर जाता है, तो वह कितना ही पापी क्यों न हो नारकीय जीवन में प्रवेश करने से वह तुरन्त मुक्त कर दिया जाता है।**

**तात्पर्य :** जैसा कि *भगवद्गीता* (८.६) में कहा गया है—

*यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।*

*तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥*

''हे कुन्तीपुत्र! शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता है, वह उस-उस भाव को निश्चित रूप से प्राप्त होता है।'' यदि कोई कृष्ण मंत्र के कीर्तन का अभ्यास करता है, तो जब वह किसी दुर्घटना से ग्रस्त होता है, तो स्वभावत: आशा की जाती है कि वह हरे कृष्ण कीर्तन करेगा। किन्तु ऐसे अभ्यास के बिना भी यदि दुर्घटनाग्रस्त होते समय या मरते समय कोई किसी भी रूप में भगवान् (हरे कृष्ण) का कीर्तन करता है, तो वह मृत्यु के बाद नारकीय जीवन से बचा लिया जाता है।

**गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ।**
**प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभि: ॥ १६ ॥**

शब्दार्थ

गुरूणाम्—भारी; च—तथा; लघूनाम्—हल्के; च—तथा; गुरूणि—भारी; च—तथा; लघूनि—हल्के; च—भी; प्रायश्चित्तानि—प्रायश्चित्त की विधियाँ; पापानाम्—पापकर्मों की; ज्ञात्वा—ठीक से जानकर; उक्तानि—नियत की गई है; महा-ऋषिभि:—बड़े-बड़े ऋषियों द्वारा।.

**प्राधिकृत विज्ञ पंण्डितों तथा महर्षियों ने बड़ी ही सावधानी के साथ यह पता लगाया है कि मनुष्य को भारी से भारी पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए प्रायश्चित की भारी विधि का तथा हल्के पापों के प्रायश्चित्त के लिए हल्की विधि का प्रयोग करना चाहिए। किन्तु हरे-कृष्ण-कीर्तन सारे पापकर्मों के प्रभावों को, चाहे वे भारी हों या हल्के, नष्ट कर देता है।**

**तात्पर्य :** इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने एक घटना का वर्णन किया है, जो

तब घटी जब साम्ब को कौरवों के दण्ड से बचाया गया था। साम्ब दुर्योधन की पुत्री से प्रेम हो गया था और चूँकि क्षत्रिय प्रथा के अनुसार क्षत्रिय की कन्या किसी को तब तक नहीं प्रदान की जाती जब तक प्रेमी अपना शौर्य न दिखाए, अत: साम्ब ने उसका अपहरण कर लिया। फलस्वरूप वह कौरवों द्वारा बन्दी बना लिया गया। बाद में जब भगवान् बलराम उसे छुड़ाने आये तो साम्ब की रिहाई को लेकर वाद-विवाद हुआ। चूँकि कोई समझौता नहीं हो पाया, अतएव बलराम ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया जिससे सारा हस्तिनापुर डगमगाने लगा और ऐसा लगा कि किसी बहुत बड़े भूकम्प से वह विनष्ट हो जायेगा। तब सारा मामला तय हुआ और साम्ब का विवाह दुर्योधन की पुत्री से कर दिया गया। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण-बलराम की शरण लेनी चाहिए जिसकी सुरक्षात्मक शक्ति इतनी महान् है कि इसकी तुलना इस जगत में किसी से नहीं की जा सकती। किसी के पापों के फल कितने ही प्रबल क्यों न हों यदि वह हरि, कृष्ण, बलराम या नारायण के नाम का कीर्तन करता है, तो ये पाप तुरन्त नष्ट हो जायेंगे।

**तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानव्रतादिभि: ।**
**नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥ १७॥**

शब्दार्थ

तै:—उनके द्वारा; तानि—वे सब; अघानि—पापकर्म तथा उनके फल; पूयन्ते—विनष्ट हो जाते हैं; तप:—तपस्या; दान—दान; व्रत-आदिभि:—व्रतों तथा अन्य कार्यों के द्वारा; न—नहीं; अधर्म-जम्—अधार्मिक कार्यों से उत्पन्न; तत्—उसका; हृदयम्—हृदय; तत्—वह; अपि—भी; ईश-अङ्घ्रि—भगवान् के चरणकमलों की; सेवया—सेवा द्वारा।

**यद्यपि तपस्या, दान, व्रत तथा अन्य विधियों से पापमय जीवन के फलों का निरसन किया जा सकता है, किन्तु ये पुण्यकर्म किसी के हृदय की भौतिक इच्छाओं का उन्मूलन नहीं कर सकते। किन्तु यदि वह भगवान् के चरणकमलों की सेवा करता है, तो वह तुरन्त ही ऐसे सारे कल्मषों से मुक्त कर दिया जाता है।**

**तात्पर्य :** जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (११.२.४२) में कहा गया है—*भक्ति: परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र च*—भक्ति इतनी प्रबल होती है कि भक्ति करने वाला तुरन्त ही पापेच्छाओं से मुक्त हो

जाता है। भौतिक जगत में सारी इच्छाएँ पापपूर्ण हैं, क्योंकि भौतिक इच्छा का अर्थ ही है इन्द्रियतृप्ति, जिसमें ऐसा कर्म निहित होता है, जो न्यूनाधिक पापपूर्ण होता है। किन्तु शुद्धभक्ति तो *अन्याभिलाषिताशून्य* होती है। दूसरे शब्दों में, यह उन भौतिक इच्छाओं से मुक्त होती है, जो कर्म तथा ज्ञान से प्रतिफलित होती हैं। जो भक्तिपद को प्राप्त होता है उसमें भौतिक इच्छाएँ नहीं रहतीं, अतएव वह पापमय जीवन से परे होता है। भौतिक इच्छाओं को पूरी तरह से रोक देना चाहिए। अन्यथा, भले ही किसी की तपस्या तथा दान कुछ समय के लिए उसे पाप से मुक्त करा सकें, किन्तु उसकी इच्छाएँ पुन: प्रकट होंगी, क्योंकि उसका हृदय अशुद्ध रहता है। इस तरह वह पापकर्म करेगा और कष्ट उठायेगा।

**अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।**
**सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानल: ॥ १८ ॥**

शब्दार्थ

अज्ञानात्—अज्ञानवश; अथवा—या; ज्ञानात्—जानकर; उत्तमश्लोक—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; नाम—पवित्रनाम; यत्—जो; सङ्कीर्तितम्—संकीर्तन किया गया; अघम्—पाप; पुंस:—मनुष्य का; दहेत्—जलाकर क्षार कर देता है; एध:—सूखी घास; यथा—जिस तरह; अनल:—अग्नि।

**जिस तरह अग्नि सूखी घास को जला कर राख कर देती है, उसी तरह भगवन्नाम, चाहे वह जाने-अनजाने में उच्चारण किया गया हो, मनुष्य के पापकर्मों के सभी फलों को निश्चित रूप से जलाकर राख कर देता है।**

**तात्पर्य :** आग अपना काम करती है चाहे उसे कोई अबोध बालक छुये या इसकी शक्ति से परिचित अन्य कोई। उदाहरणार्थ, यदि तिनकों वाले खेत में या सूखी घास में आग लगा दी जाये, चाहे वह किसी ऐसे वृद्ध व्यक्ति द्वारा लगाई जाये जो आग की शक्ति को जानता है या अज्ञानी बालक द्वारा, घास जलकर राख हो जाएगी। इसी तरह हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन की शक्ति को चाहे कोई जानता हो या न भी जानता हो, किन्तु यदि वह पवित्र नाम का कीर्तन करता है, तो समस्त पापफलों से मुक्त हो जायेगा।

**यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।**
**अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥ १९ ॥**

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अगदम्—दवा; वीर्य-तमम्—अत्यन्त तेज; उपयुक्तम्—उचित रीति से ली गई; यदृच्छया—किसी-न-किसी तरह; अजानतः—ज्ञान से विहीन पुरुष द्वारा; अपि—भी; आत्म-गुणम्—अपनी शक्ति से; कुर्यात्—प्रकट करता है; मन्त्रः—हरे कृष्ण मंत्र; अपि—भी; उदाहृतः—उच्चारण किया गया।

**यदि किसी दवा की प्रभावकारी शक्ति से अनजान व्यक्ति उस दवा को ग्रहण करता है या उसे बलपूर्वक खिलाई जाती है, तो वह दवा उस व्यक्ति के जाने बिना ही अपना कार्य करेगी, क्योंकि उसकी शक्ति रोगी के जानकारी पर निर्भर नहीं करती हैं। इसी तरह, भगवन्नाम के कीर्तन के महत्त्व को न जानते हुए भी यदि कोई व्यक्ति जाने या अनजाने में उसका कीर्तन करता है, तो वह कीर्तन अत्यन्त प्रभावकारी होगा।**

**तात्पर्य :** पाश्चात्य देशों में, जहाँ हरे कृष्ण आन्दोलन विस्तार कर रहा है, विद्वान पंडित तथा अन्य विचारवान् व्यक्ति इसकी प्रभावोत्पादकता का अनुभव कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, एक विद्वान पंडित डा. जे. स्टिलसन जुडाह इस आन्दोलन के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हुए हैं, क्योंकि उन्होंने वस्तुतः यह देखा है कि नशीली दवाओं के व्यसनी हिप्पियों को यह शुद्ध वैष्णवों में बदल रहा है और वे स्वेच्छा से कृष्ण तथा मानवता के सेवक बन रहे हैं। यहाँ तक कि कुछ वर्ष पूर्व ऐसे हिप्पी जो हरे कृष्ण मंत्र को जानते तक न थे, अब उसका कीर्तन करके शुद्ध वैष्णव बन रहे हैं। इस तरह वे समस्त पापकर्मों—यथा अवैध मैथुन, नशा, मांसाहार तथा जुआ खेलने—से मुक्त हो रहे हैं। हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रभावोत्पादकता का व्यावहारिक प्रमाण है, जिसका समर्थन इस श्लोक में हुआ है। कोई व्यक्ति हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन के महत्त्व को जाने या न जाने, किन्तु यदि वह किसी भी तरह से उसका कीर्तन करता है, तो वह तुरन्त शुद्ध हो जायेगा जिस तरह प्रभावकारी दवा खाने पर रोगी को उसका प्रभाव अनुभव हो जाएगा, चाहे वह उस दवा को जानकर ले या अजनाने ही।

श्रीशुक उवाच
त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ।
तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; ते—वे ( विष्णुदूत ); एवम्—इस प्रकार; सु-विनिर्णीय—सुनिश्चित करके; धर्मम्—असली धर्म; भागवतम्—भक्ति के रूप में; नृप—हे राजा; तम्—उसको ( अजामिल को ); याम्य-पाशात्—यमदूतों के पाश से; निर्मुच्य—छुड़ाकर; विप्रम्—ब्राह्मण को; मृत्योः—मृत्यु से; अमूमुचन्—बचा लिया।

**श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजन्! तर्क-वितर्कों द्वारा भक्ति के सिद्धान्तों का पूरी तरह से निर्णय कर चुकने के बाद विष्णु के दूतों ने अजामिल को यमदूतों के पाश से छुड़ा दिया और उसे आसन्न मृत्यु से बचा लिया।**

इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिकम् ।
यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुररिन्दम ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; प्रत्युदिताः—( विष्णुदूतों द्वारा ) उत्तर पाकर; याम्याः—यमराज के सेवक; दूताः—दूत; यात्वा—जाकर; यम-अन्तिकम्—यमराज के धाम; यम-राज्ञे—यमराज के पास; यथा—भलीभाँति; सर्वम्—सारी बातें; आचचक्षुः—विस्तार से सूचित किया; अरिन्दम—हे शत्रुओं के दमनकर्ता।

**हे राजा परीक्षित! हे समस्त शत्रुओं के दमनकर्ता! जब यमराज के सेवकों ने विष्णुदूतों से उत्तर पा लिया, तो वे यमराज के पास गये और जो कुछ घटित हुआ था, सब कह सुनाया।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में *प्रत्युदितः* शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। यमदूत इतने शक्तिशाली हैं कि उनके कार्य में कहीं भी कोई बाधा नहीं डाल सकता, किन्तु इस समय वे उस व्यक्ति को यमलोक ले जाने से रोक दिये गये, जिसे वे पापी समझते थे। अतः वे निराश होकर तुरन्त यमराज के पास लौट गये तथा उनको सारी घटना जो घटी थी, वर्णित कर दी।

द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ।
ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान्दर्शनोत्सवः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

द्विजः—ब्राह्मण ( अजामिल ); पाशात्—फंदे से; विनिर्मुक्तः—छोड़ दिये जाने पर; गत-भीः—भय से मुक्त; प्रकृतिम् गतः—होश में आया, चेत हुआ; ववन्दे—अपना सादर प्रणाम अर्पित किया; शिरसा—अपना सिर झुकाकर; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; किङ्करान्—सेवकों को; दर्शन-उत्सवः—उन्हें देखकर अतीव प्रसन्न।

**यमराज के सेवकों के फन्दे से छुड़ा दिये जाने पर ब्राह्मण अजामिल अब भय से मुक्त होकर होश में आया और तुरन्त ही उसने विष्णुदूतों के चरणकमलों पर शीश झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। वह उनकी उपस्थिति से अत्यन्त प्रसन्न था, क्योंकि उसने यमराज के दूतों के हाथों से उन्हें अपना जीवन बचाते देखा था।**

**तात्पर्य :** वैष्णव भी विष्णुदूत हैं, क्योंकि वे कृष्ण के आदेशों का पालन करते हैं। भगवान् कृष्ण उन समस्त बद्ध आत्माओं के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते हैं कि जो इस भौतिक जगत में सड़ रहे हैं, वे उनकी शरण में आयें और इस जीवन के भौतिक कष्ट से तथा मृत्यु के बाद नारकीय स्थिति के दण्ड से बचाये जा सकें। इसीलिए एक वैष्णव बद्ध आत्माओं को उनके होश में लाने का प्रयास करता है। जो अजामिल की तरह भाग्यशाली होते हैं, वे या तो विष्णुदूतों द्वारा या वैष्णवों द्वारा बचा लिये जाते हैं और इस प्रकार वे भगवद्धाम वापस जाते हैं।

**तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्कराः ।**
**सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥ २३ ॥**

शब्दार्थ

तम्—उसको ( अजामिल को ); विवक्षुम्—बोलने की इच्छा करते हुए; अभिप्रेत्य—समझ कर; महापुरुष-किङ्कराः—भगवान् विष्णु के दूत; सहसा—एकाएक; पश्यतः तस्य—उसके देखते-देखते; तत्र—वहाँ; अन्तर्दधिरे—अन्तर्धान हो गये; अनघ—हे निष्पाप महाराज परीक्षित।

**हे निष्पाप महाराज परीक्षित! पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुदूतों ने देखा कि अजामिल कुछ कहना चाह रहा था, अतः वे सहसा उसके समक्ष से अन्तर्धान हो गये।**

**तात्पर्य :** शास्त्रों का कथन है—

*पापिष्ठा ये दुराचारा देवब्राह्मणनिन्दकाः ।*

*अपथ्यभोजनास्तेषां अकाले मरणं ध्रुवम् ॥*

''जो लोग *पापिष्ठ* अर्थात् अत्यन्त पापी तथा *दुराचार* या गन्दी आदतों वाले अथवा दुराचारी

होते हैं, जो ईश्वर के अस्तित्त्व के विरुद्ध हैं, जो वैष्णवों तथा ब्राह्मणों का अनादर करते हैं और सर्वभक्षी हैं उनकी असामयिक मृत्यु निश्चित है।'' कहा जाता है कि कलियुग में मनुष्य की अधिकतम आयु एक सौ वर्षों की होती है, किन्तु ज्यों-ज्यों लोग अधम होते जाते हैं, उनकी आयु घटती जाती है (*प्रायेणाल्पायुष:*)। चूँकि अब अजामिल सारे पापफलों से मुक्त था, इसलिए उसकी आयु बढ़ा दी गई थी, यद्यपि उसे तुरन्त मरना था। जब विष्णुदूतों ने देखा कि अजामिल उनसे कुछ कहना चाह रहा है, तो वे उसे परम भगवान् का गुणगान करने का अवसर देने के उद्देश्य से अन्तर्धान हो गये। चूँकि उसके सारे पापफल नष्ट हो चुके थे, अत: अब वह परम भगवान् की महिमा का गायन करने के लिए तत्पर था। दरअसल, जब तक कोई सारे पापकर्मों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो जाता वह भगवान् का महिमागायन नहीं कर सकता। इसकी पुष्टि स्वयं कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.२८) में की है :—

*येषां त्वन्तगतं पापं ज्ञानानां पुण्यकर्मणाम्।*

*ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रता:॥*

''जिन मनुष्यों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं और जिनके पापकर्मों का पूर्णतया उच्छेदन हो चुका होता है और जो मोह के द्वन्द्वों से मुक्त हो जाते हैं, वे संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में तत्पर होते हैं।'' विष्णुदूतों ने अजामिल को भक्ति से अवगत कराया जिससे वह तुरन्त भगवद्धाम वापस जाने के योग्य बन सके। भगवान् का गुणगान करने के लिए उसकी उत्सुकता बढ़ाने के उद्देश्य से वे अन्तर्धान हो गये जिससे उनकी अनुपस्थिति में वह वियोग का अनुभव कर सके। वियोगावस्था में भगवान् का गुणगान अति तीव्र हो जाता है।

**अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयो: ।**
**धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैवेद्यं च गुणाश्रयम् ॥ २४॥**
**भक्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरे: ।**
**अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मन: ॥ २५॥**

## शब्दार्थ

अजामिलः—अजामिल ने; अपि—भी; अथ—तत्पश्चात्; आकर्ण्य—सुनकर; दूतानाम्—दूतों का; यम-कृष्णयोः—यमराज तथा भगवान् कृष्ण का; धर्मम्—वास्तविक धार्मिक सिद्धान्त; भागवतम्—जैसाकि श्रीमद्भागवत में वर्णित है अथवा जीव तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बीच सम्बन्ध विषयक; शुद्धम्—शुद्ध; त्रै-वेद्यम्—तीनों वेदों में उल्लिखित; च—भी; गुण-अश्रयम्—प्रकृति के गुणों के अधीन भौतिक धर्म; भक्ति-मान्—शुद्ध भक्त ( भौतिक गुणों से शुद्ध किया हुआ ); भगवति—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति; आशु—तुरन्त; माहात्म्य—नाम, यश आदि का गुणगान.; श्रवणात्—सुनने से; हरेः—भगवान् के; अनुतापः—खेद; महान्—अत्यधिक; आसीत्—था; स्मरतः—स्मरण करता हुआ; अशुभम्—समस्त अशुभ कर्म; आत्मनः—अपने द्वारा किये हुए।

**यमदूतों तथा विष्णुदूतों के बीच हुए वार्तालापों को सुनकर अजामिल उन धार्मिक सिद्धान्तों को समझ सका जो भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अधीन कार्य करते हैं। ये सिद्धान्त तीन वेदों में उल्लिखित हैं। वह उन दिव्य धार्मिक सिद्धान्तों को भी समझ सका जो भौतिक प्रकृति के गुणों से ऊपर हैं और जो जीव तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बीच के सम्बन्ध से सम्बन्धित हैं। इतना ही नहीं, अजामिल ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम, यश, गुणों तथा लीलाओं के गुणगान को सुना। इस तरह वह पूरी तरह शुद्ध भक्त बन गया। तब उसे अपने विगत पापकर्मों का स्मरण हुआ और उसे अत्यधिक पछतावा हुआ कि उसने ये पाप क्यों किये।**

**तात्पर्य :** *भगवद्गीता* (२.४५) में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

*त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।*

*निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥*

''वेदों में मुख्यतः प्रकृति के तीन गुणों का वर्णन हुआ है। हे अर्जुन! इन तीनों गुणों से ऊपर उठो। समस्त द्वैतों, हानि-लाभ तथा सुरक्षा की सारी चिन्ताओं से मुक्त होकर आत्मपरायण बनो।'' वैदिक सिद्धान्त निश्चय ही आध्यात्मिक पद तक ऊपर उठने के लिए क्रमिक विधि की संस्तुति करते हैं, किन्तु यदि कोई वैदिक सिद्धान्तों में ही आसक्त रहता है, तो पूरे आध्यात्मिक जीवन तक उठ पाने की कोई सम्भावना नहीं रहती। इसलिए कृष्ण अर्जुन को भक्ति करने की सलाह देते हैं, क्योंकि दिव्य धर्म की यही विधि है। भक्ति के दिव्य पद की पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में भी (१.२.६) की गई है। *स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे। भक्ति परोधर्मः* अर्थात् दिव्य धर्म है। यह कोई

भौतिक धर्म नहीं है। सामान्यत: लोग यही सोचते हैं कि धर्म का पालन भौतिक लाभ के लिए करना चाहिए। यह उन लोगों के लिए उपयुक्त हो सकता है, जो भौतिक जीवन में रुचि रखते हैं, किन्तु जो आध्यात्मिक जीवन में रुचि रखता हो उसे *परोधर्म* अर्थात् उस धर्म के प्रति अनुरक्त होना चाहिए जिससे मनुष्य परम भगवान् का भक्त बनता है (*यतो भक्तिरधोक्षजे*)। भागवत धर्म यह शिक्षा देता है कि भगवान् तथा जीवों में नित्य सम्बन्ध है और जीव का कर्तव्य है कि वह भगवान् की शरण ग्रहण करे। जब कोई व्यक्ति भक्ति के पद पर स्थित होता है, तो वह सारे अवरोधों से मुक्त हो जाता है और पूर्ण तुष्ट हो जाता है (*अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति*)। उस पद तक ऊपर उठकर अजामिल अपने विगत भौतिकतावादी कार्यों के लिए पश्चात्ताप तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम, यश, रूप तथा लीलाओं का गुणगान करने लगा।

**अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मन: ।**
**येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायतात्मना ॥ २६ ॥**

शब्दार्थ

अहो—हाय; मे—मेरी; परमम्—अत्यधिक; कष्टम्—दुखी अवस्था; अभूत्—हो गई; अविजित-आत्मन:—क्योंकि मेरी इन्द्रियाँ अनियंत्रित थीं; येन—जिनके द्वारा; विप्लावितम्—विनष्ट; ब्रह्म—मेरे सारे ब्राह्मणगुण; वृषल्याम्—एक शूद्राणी या दासी से; जायता—उत्पन्न हुए; आत्मना—मेरे द्वारा।

**अजामिल ने कहा : हाय! अपनी इन्द्रियों का दास बनकर मैं कितना अधम बन गया! मैं अपने सुयोग्य ब्राह्मण पद से नीचे गिर गया और मैंने एक वेश्या के गर्भ से बच्चे उत्पन्न किये।**

**तात्पर्य :** उच्चजाति के लोग—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—निम्न जाति की स्त्रियों के गर्भ से सन्तानें उत्पन्न नहीं करते। अत: वैदिक समाज की यह रीति है कि विवाह के लिए लड़की तथा लड़के की कुण्डलियों की जाँच-पड़ताल यह देखने के लिए की जाती है कि उनका संयोग अनुकूल तो है। वैदिक ज्योतिष यह बताता है कि कोई व्यक्ति प्रकृति के तीन गुणों के अनुसार विप्र वर्ण में, क्षत्रिय वर्ण में, वैश्य वर्ण में या शूद्र वर्ण में उत्पन्न है। इसकी जाँच आवश्यक है,

क्योंकि विप्र वर्ण के बालक तथा शूद्रवर्ण की लड़की के साथ विवाह अनमेल होता है। इससे पति तथा पत्नी दोनों ही का विवाहित जीवन दुखमय हो जाता है। अत: लड़के को उसी वर्ण की लड़की के साथ विवाह करना चाहिए। वस्तुत:, यह *त्रैगुण्य* है—अर्थात् वेदों के अनुसार भौतिक गणना है। किन्तु यदि लड़का तथा लड़की दोनों ही भक्त हों, तो ऐसे विचारों की आवश्यकता नहीं रह जाती। भक्त दिव्य होता है, अतएव भक्तों के बीच विवाह होने से लड़के तथा लड़की का अत्यन्त सुखी मेल (संयोग) बनता है।

**धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ।**
**हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापीमसतीमगाम् ॥ २७॥**

शब्दार्थ

धिक् माम्—मुझे धिक्कार है; विगर्हितम्—निन्दनीय; सद्भि:—ईमानदार व्यक्तियों द्वारा; दुष्कृतम्—पापकर्म करने वाला; कुल-कज्जलम्—जिसने कुल की परम्परा को कलंकित किया हो; हित्वा—त्यागकर; बालाम्—युवा पत्नी को; सतीम्—सती-साध्वी; य:—जो; अहम्—मैंने; सुरापीम्—शराब पीने वाली स्त्री के साथ; असतीम्—असाध्वी; अगाम्—संभोग किया।

**हाय! मुझे धिक्कार है। मैंने इतना पापपूर्ण कार्य किया है कि अपनी मैने कुल-परम्परा को लज्जित किया है। दरअसल, मैंने शराब पीने वाली पतित वेश्या के साथ संभोग करने के लिए अपनी सती तथा सुन्दर युवा पत्नी को त्याग दिया है। धिक्कार है मुझे।**

**तात्पर्य :** यह उसकी मानसिकता है, जो शुद्ध भक्त बन रहा हो। जब भगवान् तथा गुरु की कृपा से कोई भक्ति-पद को प्राप्त होता है, तो वह पहले अपने विगत पापकर्मों पर पश्चात्ताप करता है। इससे उसे आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने में सहायता मिलती है। विष्णुदूतों ने अजामिल को शुद्ध भक्त बनने का अवसर प्रदान किया था और शुद्ध भक्त का कर्तव्य है कि वह अवैध यौन, नशा, मांसाहार तथा जुआ खेलने जैसे अपने विगत पापकर्मों के लिए पश्चात्ताप करे। उसे न केवल अपनी पुरानी गन्दी आदतें त्याग देनी चाहिए, अपितु अपने विगत पापकर्मों के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। शुद्धभक्ति का यही मानक है।

**वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ।**
**अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥ २८ ॥**

शब्दार्थ

वृद्धौ—वृद्ध; अनाथौ—जिनकी देखरेख करने वाला कोई न हो; पितरौ—अपने माता-पिता; न अन्य-बन्धू—जिनके कोई अन्य मित्र नहीं था; तपस्विनौ—जिन्होंने बड़े कष्ट सहे थे; अहो—हाय; मया—मेरे द्वारा; अधुना—सम्प्रति; त्यक्तौ—त्यागे हुए; अकृत-ज्ञेन—अकृतज्ञ द्वारा; नीच-वत्—सबसे निन्दनीय व्यक्ति की तरह।

**मेरे माता-पिता वृद्ध थे और उनकी देखरेख करने वाला कोई अन्य पुत्र या मित्र न था। चूँकि मैंने उनकी देखभाल नहीं की, अतएव उन्हें बहुत ही कष्ट में रहना पड़ा। हाय! एक निन्दनीय निम्न जाति के पुरुष की तरह मैंने उस स्थिति में अकृतज्ञतापूर्वक उन्हें छोड़ दिया।**

**तात्पर्य :** वैदिक सभ्यता के अनुसार हर व्यक्ति पर ब्राह्मणों, वृद्धों, स्त्रियों, बालकों तथा गौवों की देखरेख करने का उत्तरदायित्त्व होता है। यह हर एक का, विशेषतया उच्च जाति के मनुष्य का, कर्तव्य है। अजामिल ने वेश्या की संगति के कारण अपने सारे कर्तव्यों का परित्याग कर दिया। इस पर पश्चात्ताप करते हुए अब वह अपने को पूरी तरह पतित मान रहा था।

**सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ।**
**धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥ २९ ॥**

शब्दार्थ

सः—ऐसा व्यक्ति; अहम्—मैं; व्यक्तम्—अब स्पष्ट है; पतिष्यामि—नीचे गिरूँगा; नरके—नरक में; भृश-दारुणे—अत्यन्त कष्टमय; धर्म-घ्नाः—धार्मिक सिद्धान्तों को तोड़ने वाले; कामिनः—अत्यधिक कामुक; यत्र—जहाँ; विन्दन्ति—सहते हैं; यम-यातनाः—यमराज द्वारा दी जाने वाली कष्टमय दशाएँ।

**अब यह स्पष्ट है कि ऐसे कर्मों के फलस्वरूप मुझ जैसे पापी व्यक्ति को उस नारकीय अवस्था में फेंक दिया जाना चाहिए जो धार्मिक सिद्धान्तों को तोड़ने वाले लोगों के निमित्त होती है और मुझे वहाँ घोर कष्ट सहने चाहिए।**

**किमिदं स्वप्न आहो स्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् ।**
**क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ॥ ३० ॥**

शब्दार्थ

किम्—क्या; इदम्—यह; स्वप्ने—स्वप्न में; आहो स्वित्—अथवा; साक्षात्—प्रत्यक्ष; दृष्टम्—देखा हुआ; इह—यहाँ; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; क्व—कहाँ; याता:—चले गये; अद्य—अभी; ते—वे सभी; ये—जो; माम्—मुझको; व्यकर्षन्—घसीट रहे थे; पाश-पाणय:—अपने हाथों में पाश लिये हुए।

**क्या मैंने यह सपना देखा था या यह सच्चाई थी? मैंने भयावह पुरुषों को हाथ में रस्सी लिये मुझको बन्दी बनाने के लिए आते और मुझे दूर घसीटकर ले जाते हुए देखा। वे कहाँ चले गये हैं?**

**अथ ते क्व गता: सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शना: ।**
**व्यामोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुव: ॥ ३१ ॥**

शब्दार्थ

अथ—इसलिए; ते—वे व्यक्ति; क्व—कहाँ; गता:—चले गये; सिद्धा:—मुक्त; चत्वार:—चारों व्यक्ति; चारु-दर्शना:—देखने में अतीव सुन्दर; व्यामोचयन्—उन्होंने छोड़ दिया; नीयमानम्—ले जाये जा रहे मुझे; बद्ध्वा—बन्दी बनाकर; पाशै:—रस्सियों से; अध: भुव:—नीचे नरक क्षेत्र को।

**और वे मुक्त तथा अति सुन्दर चार पुरुष कहाँ चले गये जिन्होंने मुझे बन्धन से मुक्त किया और मुझे नारकीय क्षेत्रों में घसीट कर ले जाये जाने से बचाया?**

**तात्पर्य :** जैसाकि पाँचवें स्कन्ध के विवरणों से हम जान चुके हैं नरकलोक इस ब्रह्माण्ड के निचले हिस्सों में स्थित हैं। इसीलिए वे *अधो भुव:* कहलाते हैं। अजामिल समझ गया था कि यमदूत उसी हिस्से से आये थे।

**अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ।**
**भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥ ३२ ॥**

शब्दार्थ

अथ—इसलिए; अपि—यद्यपि; मे—मुझ; दुर्भगस्य—इतने अभागे का; विबुध-उत्तम—उच्च भक्तों का; दर्शने—दर्शन करने से; भवितव्यम्—होगा; मङ्गलेन—शुभ कार्य; येन—जिससे; आत्मा—आत्मा; मे—मेरी; प्रसीदति—वास्तव में सुखी होती है।

**निश्चय ही मैं अति निन्दनीय तथा अभागा हूँ कि पापकर्मों के समुद्र में डूबा हुआ हूँ, किन्तु फिर भी अपने पूर्व आध्यात्मिक कर्मों के कारण मैं उन चार महापुरुषों का दर्शन कर सका जो मुझे बचाने आये थे। उनके आने से अब मैं अत्यधिक सुखी अनुभव करता हूँ।**

**तात्पर्य :** जैसाकि *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य २२.५४) में कहा गया है—

*'साधु-संग', 'साधु-संग'—सर्व-शास्त्रे कय।*

*लव-मात्र साधु-संगे सर्व-सिद्धि हय॥*

''सभी शास्त्र भक्तों की संगति की संस्तुति करते हैं, क्योंकि एक क्षण की भी ऐसी संगति से सभी सिद्धियों के बीज प्राप्त हो सकते हैं।'' अजामिल अपने जीवन के प्रारम्भ में निश्चित रूप से शुद्ध था और वह भक्तों तथा ब्राह्मणों की संगति करता था। अपने उसी पुण्यकर्म के फलस्वरूप पतित होते हुए भी उसे अपने पुत्र का नाम नारायण रखने की प्रेरणा मिली थी। निश्चय ही यह उस नेक सलाह के कारण था, जो उसे अपने भीतर से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा दी गई थी। जैसा कि *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कहते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मैं हर व्यक्ति के हृदय के भीतर स्थित हूँ और मुझ से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होते हैं।'' प्रत्येक हृदय में स्थित भगवान् इतने दयालु हैं कि यदि किसी ने कभी उनकी सेवा कि हो, तो वे उसे भुलाते नहीं। इस तरह भगवान् ने अजामिल को भीतर से अवसर प्रदान किया कि वह अपने सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण रखे जिससे स्नेहवश वह उसे निरन्तर ''नारायण'' ''नारायण'' कहकर पुकारा करे और इस तरह अपनी मृत्यु के समय सबसे भयावह तथा घातक स्थिति से बच सके। कृष्ण की कृपा ऐसी ही होती है। *गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति लता-बीज*—गुरु तथा कृष्ण की कृपा से मनुष्य को भक्ति का बीज मिलता है। यह संगति भक्त को बड़े से बड़े भय से बचाती है। हम अपने कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में भक्त का नाम ऐसे रूप में बदल देते हैं, जो उसे विष्णु का स्मरण कराये। यदि भक्त अपनी मृत्यु के समय अपना ही नाम, यथा कृष्णदास या गोविन्ददास स्मरण कर सके, तो वह महानतम संकट से बच सकता है। इसीलिए दीक्षा के समय नाम-परिवर्तन अति आवश्यक है। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन इतना सतर्क है कि यह किसी-न-किसी रूप में कृष्ण का स्मरण करने का सुअवसर प्रदान करता है।

**अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ।**
**वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥ ३३ ॥**

शब्दार्थ

अन्यथा—अन्यथा, नहीं तो; म्रियमाणस्य—मरणासन्न व्यक्ति का; न—नहीं; अशुचेः—अत्यन्त मलिन; वृषली-पतेः—वेश्यागामी; वैकुण्ठ—वैकुण्ठ के भगवान् का; नाम-ग्रहणम्—पवित्र नाम का कीर्तन; जिह्वा—जीभ; वक्तुम्—कहने में; इह—इस स्थिति में; अर्हति—समर्थ है।

**यदि मैने विगत में भक्ति न की होती तो मुझ मलिन वेश्यागामी को, जो मरणासन्न था किस तरह वैकुण्ठपति के पवित्र नाम का उच्चारण करने का अवसर मिल पाता? निश्चय ही ऐसा सम्भव न हो पाता।**

**तात्पर्य :** वैकुण्ठपति का अर्थ है ''आध्यात्मिक लोक के स्वामी'' जो वैकुण्ठ नाम से भिन्न नहीं है। अजामिल, जो अब स्वरूपसिद्ध आत्मा था यह समझ सका कि अपने विगत आध्यात्मिक भक्तिमय कार्यों के कारण ही वह मृत्यु के समय अपनी भयावह स्थिति में वैकुण्ठपति के नाम का उच्चारण करने का अवसर प्राप्त कर सका।

**क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ।**
**क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥ ३४ ॥**

शब्दार्थ

क्व—कहाँ; च—भी; अहम्—मैं; कितवः—वंचक, ठग; पापः—मूर्त रूप में सारे पाप; ब्रह्म-घ्नः—ब्राह्मण संस्कृति का हत्यारा; निरपत्रपः—निर्लज्ज; क्व—कहाँ; च—भी; नारायण—नारायण; इति—इस प्रकार; एतत्—यह; भगवत्-नाम—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पवित्र नाम; मङ्गलम्—सर्व मंगलप्रद।

**अजामिल कहता रहा : मैं ऐसा निर्लज्ज ठग हूँ जिसने अपनी ब्राह्मण संस्कृति की हत्या कर दी है। निस्सन्देह, मैं साक्षात् पाप हूँ। भला मैं भगवान् नारायण के पवित्रनाम के सर्वमंगलकारी कीर्तन की बराबरी में कहाँ ठहर सकता हूँ?**

**तात्पर्य :** कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के माध्यम से नारायण या कृष्ण के पवित्र नाम का प्रसार करने वालों को यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि इसमें आने के पूर्व हमारी स्थिति क्या थी और अब वह क्या है। हम मांसाहारी, शराबी तथा स्त्री-आखेटकों के गर्हित जीवनों में जा गिरे थे जिनमें सभी प्रकार के पापकर्म हमने किए, किन्तु अब हमें हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने का

सुअवसर प्रदान किया गया है। अतएव हमें इस सुअवसर की सदैव प्रशंसा करनी चाहिए। भगवत्कृपा से हम अनेक शाखाएँ खोल रहे हैं और हमें इस सौभाग्य का लाभ भगवन्नाम का कीर्तन करने तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रत्यक्ष सेवा करने में उठाना चाहिए। हमें अपनी वर्तमान तथा विगत स्थितियों के बीच जो अन्तर है उसके प्रति सचेत रहना चाहिए और हमें अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए कि कहीं हम सर्वोच्च जीवन से नीचे न गिर जाँय।

**सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः ।**
**यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥ ३५ ॥**

शब्दार्थ

सः—ऐसा व्यक्ति; अहम्—मैं; तथा—इस तरह से; यतिष्यामि—मैं प्रयत्न करूँगा; यत-चित्त-इन्द्रिय—मन तथा इन्द्रियों को नियंत्रित करूँगा; अनिलः—तथा आन्तरिक वायु; यथा—जिससे; न—नहीं; भूयः—पुनः; आत्मानम्—मेरी आत्मा; अन्धे—अंधकार में; तमसि—अज्ञान में; मज्जये—मैं डूब रहा हूँ।

**मैं ऐसा पापी व्यक्ति हूँ, किन्तु अब मुझे यह अवसर प्राप्त हुआ है, अतः मैं अपने मन, जीवन ( प्राण ) तथा इन्द्रियों को पूरी तरह से वश में करके भक्ति में अपने को लगाऊँगा जिससे मैं पुनः गहन अंधकार तथा भौतिक जीवन के अज्ञान में न गिरूँ।**

**तात्पर्य :** हममें से प्रत्येक को यही संकल्प होना चाहिए। हम कृष्ण तथा गुरु की कृपा से इस उच्च पद तक ऊपर उठे हैं और यदि हम यह स्मरण रखें कि यह महान् अवसर है और कृष्ण से प्रार्थना करें कि हम पुनः नीचे न गिरें तो हमारे जीवन सफल हो जाएंगे।

**विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ।**
**सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ३६ ॥**
**मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्यात्ममायया ।**
**विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥ ३७ ॥**

शब्दार्थ

विमुच्य—छूटकर; तम्—उससे; इमम्—यह; बन्धम्—बन्धन; अविद्या—अविद्या के कारण; काम—कामेच्छाओं के कारण; कर्म-जम्—कार्यों से उत्पन्न; सर्व-भूत—सारे जीवों का; सुहृत्—मित्र; शान्तः—अत्यन्त शान्त; मैत्रः—मैत्रीपूर्ण; करुणः—दयालु; आत्म-वान्—स्वरूपसिद्ध; मोचये—मैं पाशमुक्त करूँगा; ग्रस्तम्—कसा हुआ; आत्मानम्—मेरी

आत्मा; योषित्-मय्या—स्त्री रूप में; आत्म-मायया—भगवान् की मोहिनी शक्ति से; विक्रीडितः—खिलवाड़ करता; यया—जिससे; एव—निश्चय; अहम्—मैं; क्रीडा-मृगः—वशीभूत पशु; इव—सदृश; अधमः—इतना पतित।

**शरीर से अपनी पहचान बनाने के कारण मनुष्य इन्द्रियतृप्ति के लिए इच्छाओं के अधीन होता है और इस तरह वह अपने को अनेक प्रकार के पवित्र तथा अपवित्र कार्यों में लगाता है। यही भौतिक बन्धन है। अब मैं अपने आपको उस भौतिक बन्धन से छुड़ाऊँगा जो स्त्री के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की मोहिनी शक्ति द्वारा उत्पन्न किया गया है। सर्वाधिक पतितात्मा होने से मैं माया का शिकार बना और उस नाचने वाले कुत्ते के समान बन गया जो स्त्री के हाथ के इशारे पर चलता है। अब मैं सारी कामेच्छाओं को त्याग दूँगा और इस मोह से अपने को मुक्त कर लूँगा। मैं दयालु एवं समस्त जीवों का शुभैषी मित्र बनूंगा तथा कृष्णभावनामृत में अपने को सदैव लीन रखूँगा।**

**तात्पर्य :** समस्त कृष्णभावनाभावित व्यक्तियों के लिए संकल्प का यही मानदण्ड होना चाहिए। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को माया के पाश से अपने को छुड़ा लेना चाहिए और ऐसे पाशों से कष्ट पा रहे अन्य सारे लोगों के प्रति दयालु होना चाहिए। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के कार्यकलाप न केवल स्वयं के लिए हैं, अपितु अन्यों के लिए भी हैं। कृष्णभावनामृत की यही पूर्णता है। जो व्यक्ति अपने मोक्ष में ही रुचि रखता है, वह कृष्णभावनामृत में उतना उन्नत नहीं होता जितना कि अन्यों के प्रति दया अनुभव करने वाला तथा कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का प्रसार करने वाला होता है। ऐसा उन्नत भक्त कभी नीचे नहीं गिरेगा, क्योंकि कृष्ण उसे विशेष संरक्षण प्रदान करेंगे। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का यही सार है। हर व्यक्ति माया के हाथों के खिलौने जैसा है और वह उसे जिस तरह घुमाती है, कार्य करता है। मनुष्य को चाहिए कि अपने को तथा अन्यों को इससे छुड़ाने के लिए कृष्णभावनामृत को स्वीकार करे।

**ममाहमिति देहादौ हित्वामिथ्यार्थधीर्मतिम् ।**
**धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥ ३८ ॥**

शब्दार्थ

मम—मेरा; अहम्—मैं; इति—इस प्रकार; देह-आदौ—शरीर तथा उससे सम्बद्ध वस्तुओं में; हित्वा—त्यागकर; अमिथ्या—मिथ्या नहीं; अर्थ—मूल्यों पर; धीः—अपनी चेतना से; मतिम्—प्रवृत्ति को; धास्ये—लगाऊँगा; मनः—मेरा मन; भगवति—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; शुद्धम्—शुद्ध; तत्—उनका नाम; कीर्तन-आदिभिः—कीर्तन , श्रवण इत्यादि के द्वारा।

**चूँकि मैंने भक्तों की संगति में भगवान् के पवित्र नाम का केवल कीर्तन किया है, इसलिए मेरा हृदय अब शुद्ध बन रहा है। इसलिए मैं अब पुनः भौतिक इन्द्रियतृप्ति के झूठे आकर्षणों का शिकार नहीं बनूँगा। चूँकि अब मैं परम सत्य में स्थित हो चुका हूँ, अतः अब उसके बाद मैं शरीर के साथ अपनी पहचान नहीं करूँगा। ''मैं'' तथा ''मेरा'' के मिथ्या विचारों को त्यागकर मैं अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों में स्थिर करूँगा।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में इसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है कि मनुष्य किस तरह भव-बन्धन का शिकार हो जाता है। इसका शुभारम्भ आत्मा के रूप में शरीर की गलत पहचान से होता है। इसलिए *भगवद्गीता* का शुभारम्भ इस आध्यात्मिक शिक्षा से होता है कि व्यक्ति शरीर नहीं है, अपितु वह शरीर के भीतर है। यह चेतना तभी सम्भव है जब वह एकमात्र कृष्ण के नाम का, हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करे और अपने को सदैव भक्तों की संगति में रखे। यही सफलता का रहस्य है। इसीलिए हम बल देते हैं कि मनुष्य भगवन्नाम का कीर्तन करे और अपने को इस भौतिक जगत के कल्मषों से, विशेषतया अवैध मैथुन, मांसाहार, नशा तथा जुआ की कामेच्छाओं के कल्मषों से मुक्त रखे। मनुष्य को संकल्पपूर्वक इन सिद्धान्तों का पालन करने का व्रत लेना चाहिए और इस तरह संसार की कष्टमय दशा से बचना चाहिए। सबसे पहली आवश्यकता है कि देहात्मबुद्धि से मुक्त हुआ जाए।

**इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ।**
**गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥ ३९ ॥**

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; जात-सुनिर्वेदः—( अजामिल ) जो भौतिक देहात्मबुद्धि से विरक्त हो चुका था; क्षण-सङ्गेन—क्षण भर की संगति से; साधुषु—भक्तों की; गङ्गा-द्वारम्—हरद्वार ( हरिद्वार ); उपेयाय—गया; मुक्त—मुक्त होकर; सर्व-अनुबन्धनः—सभी प्रकार के भौतिक बन्धनों से।

**भक्तों ( विष्णुदूतों ) की क्षण-भर की संगति के कारण अजामिल ने अपने मन को संकल्पपूर्वक भौतिक देहात्मबुद्धि से विलग कर लिया। इस तरह समस्त भौतिक आकर्षण से मुक्त हुआ वह तुरन्त हरद्वार के लिए चल पड़ा।**

**तात्पर्य :** *मुक्त-सर्वानुबन्धनः* शब्द संकेत करता है कि इस घटना के बाद अजामिल अपनी पत्नी तथा बच्चों की परवाह न करते हुए अपने आध्यात्मिक जीवन की अधिक उन्नति के लिए सीधे हरद्वार गया। अब हमारे कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के वृन्दावन तथा नवद्वीप में केन्द्र हैं जिससे वे लोग जो वानप्रस्थ जीवन बिताना चाहते हैं, चाहे वे भक्त हों या नहीं, वहाँ जा सकते हैं और संकल्पपूर्वक *देहात्मबुद्धि* का परित्याग कर सकते हैं। ऐसे लोगों का इन पवित्र स्थानों में स्वागत है कि वे भगवान् के नाम का कीर्तन करें तथा प्रसाद ग्रहण करने की अतीव सरल विधि से सर्वोच्च सफलता पाने के उद्देश्य से शेष जीवन वहीं पर रहें। इस तरह वे भगवद्धाम वापस जा सकते हैं। हरद्वार में हमारा कोई केन्द्र नहीं है, किन्तु भक्तों के लिए वृन्दावन तथा श्रीधाम मायापुर अन्य स्थानों की अपेक्षा अच्छे हैं। श्री चैतन्य चन्द्रोदय मन्दिर भक्तों की संगति करने का सुअवसर प्रदान करता है। आइये, हम सभी इस अवसर का लाभ उठायें।

**स तस्मिन्देवसदन आसीनो योगमास्थितः ।**
**प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥ ४० ॥**

शब्दार्थ

सः—उसने ( अजामिल ने ); तस्मिन्—उस स्थान ( हरद्वार ) में; देव-सदने—एक विष्णु मन्दिर में; आसीनः—स्थित होकर; योगम् आस्थितः—भक्तियोग सम्पन्न किया; प्रत्याहृत—इन्द्रिय तृप्ति के समस्त कार्यों से विलग; इन्द्रिय-ग्रामः—अपनी इन्द्रियाँ; युयोज—स्थिर किया; मनः—मन; आत्मनि—आत्मा, परमात्मा या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर।

**हरद्वार में अजामिल ने एक विष्णुमन्दिर में शरण ली जहाँ उसने भक्तियोग की विधि को सम्पन्न किया। उसने अपनी इन्द्रियों को वश में किया और अपने मन को पूरी तरह से भगवान् की सेवा में लगा दिया।**

**तात्पर्य :** जो भक्त कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में सम्मिलित हो चुके हैं, वे हमारे अनेक मन्दिरों में सुविधापूर्वक रह सकते हैं और भगवान् की भक्ति में लग सकते हैं। इस तरह वे मन तथा इन्द्रियों को वश में कर सकते हैं और जीवन में सर्वोच्च सफलता पा सकते हैं। यह विधि अनन्त काल से चली आ रही है। हमें चाहिए कि अजामिल के जीवन से सीख लेकर इस पथ का अनुगमन करने के लिए जो भी आवश्यक हो उसे संकल्प के साथ करने का व्रत लें।

**ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ।**
**युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४१ ॥**

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; गुणेभ्यः—प्रकृति के गुणों से; आत्मानम्—मन को; वियुज्य—विलग करके; आत्म-समाधिना—भक्ति में पूरी तरह; युयुजे—लगा दिया; भगवत्-धाम्नि—भगवान् के रूप में; ब्रह्मणि—जो परब्रह्म है ( मूर्ति पूजा नहीं ); अनुभव-आत्मनि—जिसके विषय में सदैव सोचा जाता है ( चरणकमलों से शुरू करके धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ते हुए )।

**अजामिल पूरी तरह से भक्ति में लग गया। इस तरह उसने इन्द्रियतृप्ति से अपने मन को विलग कर लिया और वह भगवान् के स्वरूप का चिन्तन करने में पूरी तरह लीन हो गया।**

**तात्पर्य :** यदि कोई व्यक्ति मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा करता है, तो उसका मन स्वाभाविक रूप से भगवान् तथा उनके स्वरूप के विचारों में लीन हो जायेगा। भगवान् के रूप तथा स्वयं भगवान् में कोई अन्तर नहीं है। इसलिए योग की सबसे सरल प्रणाली भक्तियोग है। योगीजन अपने हृदय के भीतर स्थित परमात्मा अर्थात् विष्णु के स्वरूप पर अपने मन को एकाग्र करने का प्रयास करते हैं, किन्तु इसी उद्देश्य की पूर्ति सरलता से हो जाती है, यदि मनुष्य का मन मन्दिर में पूजे जाने वाले अर्चाविग्रह में लीन हो ले। हर मन्दिर में भगवान् का दिव्यरूप रहता है और मनुष्य आसानी से इसके विषय में चिन्तन कर सकता है। आरती के समय भगवान् का दर्शन करने, भोग चढ़ाने तथा अर्चाविग्रह के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करने से मनुष्य उच्चकोटि का योगी बन जाता है। योग की सर्वोच्च विधि यही है, जिसकी पुष्टि स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने *भगवद्गीता* (६.४७) में की है—

*योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।*

*श्रद्धावान् भजते यो मां समे युक्ततमो मत:॥*

''समस्त योगियों में से जो योगी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मेरे परायण है, अपने अन्त:करण में मेरे विषय में सोचता है और मेरी दिव्य प्रेमाभक्ति करता है, वह योग में मुझसे परम अन्तरंग रूप में जुड़ा रहता है और सबों में से सर्वोच्च है। यही मेरा मत है।'' उच्चकोटि का योगी वह है, जो अपनी इन्द्रियों को वश में करता है और भगवान् के स्वरूप का सदैव चिन्तन करते हुए अपने आपको भौतिक कार्यों से विलग कर लेता है।

**यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुर: ।**
**उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववन्दे शिरसा द्विज: ॥ ४२ ॥**

शब्दार्थ

यर्हि—जब; उपारत-धी:—उसका मन तथा बुद्धि स्थिर थे; तस्मिन्—उस समय; अद्राक्षीत्—देखा था; पुरुषान्—पुरुषों को ( विष्णुदूतों को ); पुर:—अपने समक्ष; उपलभ्य—पाकर; उपलब्धान्—जो पहले मिल चुके थे; प्राक्—पहले; ववन्दे—नमस्कार किया; शिरसा—सिर के बल; द्विज:—ब्राह्मण ने।

**जब ब्राह्मण अजामिल की बुद्धि तथा मन भगवान् के स्वरूप पर स्थिर हो गये तो उसने पुन: उन चार दिव्य पुरुषों को अपने समक्ष देखा। वह समझ गया कि ये वही हैं, जिन्हें वह पहले देख चुका है, अत: उनके समक्ष उसने नतमस्तक होकर नमस्कार किया।**

**तात्पर्य :** जब अजामिल का मन भगवान् के स्वरूप पर दृढ़तापूर्वक स्थिर हो गया तो जिन विष्णुदूतों ने उसे छुड़ाया था वे पुन: उसके समक्ष आये। विष्णुदूत कुछ काल के लिए दूर चले गये थे जिससे अजामिल को भगवान् के ध्यान में स्थिर होने का समय मिल जाये। चूँकि अब उसकी भक्ति परिपक्व हो चुकी थी, अत: वे उसे लेने के लिए लौटकर आये। यह जानकर कि वे ही विष्णुदूत लौटे हैं, अजामिल ने नतमस्तक होकर उन्हें नमस्कार किया।

**हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ।**
**सद्य: स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥ ४३ ॥**

शब्दार्थ

हित्वा—त्यागकर; कलेवरम्—भौतिक शरीर; तीर्थे—तीर्थस्थान में; गङ्गायाम्—गंगानदी के तट पर; दर्शनात् अनु—दर्शन करने के बाद; सद्यः—तुरन्त; स्व-रूपम्—अपना आदि आध्यात्मिक रूप; जगृहे—धारण कर लिया; भगवत्-पार्श्व-वर्तिनाम्—जो भगवान् के पार्षद के लिए उपयुक्त है।

**विष्णुदूतों का दर्शन करने के बाद अजामिल ने गंगानदी के तट पर हरद्वार में अपना भौतिक शरीर त्याग दिया। उसे अपना आदि आध्यात्मिक शरीर पुनः मिल गया जो भगवान् के पार्षद के लिए उपयुक्त था।**

**तात्पर्य :** *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कहते हैं—

*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।*

*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥*

"हे अर्जुन! जो मेरे आविर्भाव तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह इस शरीर को छोड़ने पर इस संसार में पुनःजन्म नहीं लेता, अपितु मेरे सनातन धाम को प्राप्त होता है।"

कृष्णभावनामृत में पूर्णता का फल यह है कि मनुष्य अपने भौतिक शरीर को त्यागने के बाद तुरन्त ही अपने आदि आध्यात्मिक शरीर में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पार्षद बनने के लिए आध्यात्मिक जगत में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। कुछ भक्त वैकुण्ठलोक जाते हैं और कुछ कृष्ण के पार्षद बनने के लिए गोलोक वृन्दावन जाते हैं।

**साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः ।**
**हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥ ४४॥**

शब्दार्थ

साकम्—साथ; विहायसा—आकाश मार्ग द्वारा; विप्रः—ब्राह्मण ( अजामिल ); महापुरुष-किङ्करैः—विष्णुदूतों के साथ; हैमम्—सोने का बना; विमानम्—विमान में; आरुह्य—सवार होकर; ययौ—गया; यत्र—जहाँ; श्रियः पतिः—लक्ष्मी-पति विष्णु।

**भगवान् विष्णु के दूतों के साथ अजामिल सोने के बने हुए विमान पर सवार हुआ। वह आकाश मार्ग से जाते हुए सीधे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के धाम गया।**

**तात्पर्य :** भौतिक विज्ञानी वर्षों तक चन्द्रमा तक जाने का प्रयास करते रहे हैं, किन्तु वे अब

भी वहाँ जाने में असमर्थ हैं। किन्तु आध्यात्मिक लोकों के आध्यात्मिक विमान मनुष्य को क्षण-भर में भगवद्धाम ले जा सकते हैं। ऐसे आध्यात्मिक विमान की गति की केवल कल्पना ही की जा सकती है। आत्मा मन से भी सूक्ष्म है और हर एक को इसका अनुभव है कि मन कितनी तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा करता है। इसलिए मन की गति से तुलना करके आध्यात्मिक स्वरूप की तेजी (त्वरा) की कल्पना की जा सकती है। अपना भौतिक शरीर त्यागने के तुरन्त बाद पूर्णभक्त क्षण-भर से भी कम समय में भगवद्धाम लौट सकता है।

**एवं स विप्लावितसर्वधर्मा**
**दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ।**
**निपात्यमानो निरये हतव्रतः**
**सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥ ४५ ॥**

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; सः—वह ( अजामिल ); विप्लावित-सर्व-धर्माः—जिसने सारे धर्मों को त्याग दिया था; दास्याः पतिः—वेश्या का पति; पतितः—पतित; गर्ह्य-कर्मणा—गर्हित कामों में लगे रहने से; निपात्यमानः—गिरते हुए; निरये—नरक में; हत-व्रतः—जिसने अपने सारे व्रतों को तोड़ रखा था; सद्यः—तुरन्त; विमुक्तः—मुक्त; भगवत्-नाम—भगवान् का पवित्र नाम; गृह्णन्—कीर्तन करते हुए।

**अजामिल ब्राह्मण था जिसने कुसंगति के कारण सारी ब्राह्मण-संस्कृति तथा धार्मिक नियमों को त्याग दिया था। सर्वाधिक पतित होने से वह चोरी करता, शराब पीता तथा अन्य गर्हित कार्य करता था। उसने एक वेश्या भी रख ली थी। इस तरह उसका यमराज के दूतों द्वारा नरक ले जाया जाना सुनिश्चित था, किन्तु नारायण के पवित्र नाम का लेश मात्र उच्चारण करने से ही तुरन्त उसे बचा लिया गया।**

**नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं**
**मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।**
**न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो**
**रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥ ४६ ॥**

शब्दार्थ

न—नहीं; अतः—इसलिए; परम्—श्रेष्ठतर साधन; कर्म-निबन्ध—सकाम कर्मों के फलस्वरूप कष्ट भोगने की बाध्यता; कृन्तनम्—जो पूरी तरह छिन्न कर दे; मुमुक्षताम्—भव-बन्धन के पाश से बाहर निकलने की इच्छा रखने वाले पुरुषों का; तीर्थ-पद—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विषय में, जिनके पाँवों पर सारे तीर्थस्थान स्थित हैं; अनुकीर्तनात्—प्रामाणिक गुरु के निर्देशानुसार कीर्तन करने की अपेक्षा; न—नहीं; यत्—क्योंकि; पुनः—फिर; कर्मसु—सकाम कर्मों में; सज्जते—लिप्त होता है; मनः—मन; रजः-तमोभ्याम्—रजो तथा तमो गुणों द्वारा; कलिलम्—दूषित; ततः—तत्पश्चात्; अन्यथा—किसी अन्य साधन से।

**अतः जो व्यक्ति भवबन्धन से मुक्त होना चाहता है, उसे चाहिए कि उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के नाम, यश, रूप तथा लीलाओं के कीर्तन तथा गुणगान की विधि को अपनाए, जिनके चरणों पर सारे तीर्थस्थान स्थित हैं। अन्य साधनों से, यथा पवित्र पश्चात्ताप, ज्ञान, यौगिक ध्यान से उसे उचित लाभ प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी विधियों का पालन करने पर भी मनुष्य अपने मन को वश में न कर सकने के कारण पुनः सकाम कर्म करने लगता है, क्योंकि मन प्रकृति के निम्न गुणों से—यथा रजो तथा तमो गुणों से—संदूषित रहता है।**

**तात्पर्य :** वस्तुतः यह देखा गया है कि तथाकथित सिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद भी अनेक कर्मी, ज्ञानी तथा योगी पुनः भौतिक कर्मों में लिप्त हो जाते हैं। अनेक तथाकथित स्वामी तथा योगी भौतिक कर्मों को मिथ्या कहकर त्याग देते हैं ( *जगन्मिथ्या*), किन्तु तो भी कुछ काल बाद वे पुनः अस्पताल तथा पाठशालाएँ खोलने या जनता के लाभ हेतु अन्य कार्य जैसे भौतिक कार्य करने लगते हैं। कभी-कभी वे राजनीति में भाग लेते हैं, यद्यपि वे मिथ्या ही अपने आपको संन्यासी घोषित करते हैं। किन्तु सम्यक् निष्कर्ष तो यह है कि यदि कोई वास्तव में भौतिक जगत से बाहर निकलने का इच्छुक है, तो उसे भक्ति ग्रहण करनी चाहिए जिसका शुभारम्भ *श्रवणं कीर्तनं विष्णोः* अर्थात् भगवान् की महिमा के कीर्तन तथा श्रवण से होता है। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन ने वस्तुतः इसे सिद्ध कर दिया है। पाश्चात्य देशों में, जहाँ अनेक युवक नशीली दवाओं की लत में थे और जिनमें अनेक बुरी आदतें थीं, उन्होंने उन सारी लालसाओं को त्याग दिया और वे कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में सम्मिलित होते ही गम्भीरतापूर्वक भगवान् की महिमा का कीर्तन करने में जुट गये। दूसरे शब्दों में, रजो तथा तमो गुणों में सम्पन्न कर्मों के प्रायश्चित्त की यह पूर्ण विधि है।

*श्रीमद्भागवत* (१.२.१९) में कहा गया है—

*तदा रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये।*

*चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥*

रजो तथा तमो गुणों के फलस्वरूप मनुष्य अधिकाधिक कामी तथा लोभी बन जाता है, किन्तु जब वह कीर्तन तथा श्रवण विधि अपना लेता है, तो वह सतोगुण के पद को प्राप्त होता है और सुखी बन जाता है। ज्यों-ज्यों वह भक्ति में प्रगति करता है, उसके सारे संशय पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं (*भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशय:*)। इस तरह सकाम कर्मों के लिए उसकी इच्छा रूपी ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो जाती है।

**य एतं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ।**
**शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥ ४७॥**
**न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करै: ।**
**यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४८॥**

शब्दार्थ

य:—जो कोई; एतम्—इस; परमम्—अत्यन्त; गुह्यम्—गोपनीय; इतिहासम्—ऐतिहासिक कथा को; अघ-अपहम्—पापों के सारे फलों से मुक्त करने वाली; शृणुयात्—सुनता है; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; युक्त:—से युक्त; य:—जो; च—भी; भक्त्या—महती भक्ति से; अनुकीर्तयेत्—दुहराता है; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; स:—ऐसा व्यक्ति; नरकम्—नरक को; याति—जाता है; न—नहीं; ईक्षित:—देखा जाता है; यम-किङ्करै:—यमराज के दूतों द्वारा; यदि अपि—यद्यपि; अमङ्गल:—अशुभ; मर्त्य:—भौतिक शरीर में; विष्णु-लोके—वैकुण्ठलोक में; महीयते—सादर स्वागत किया जाता है।

**चूँकि इस अतिगोपनीय ऐतिहासिक कथा में सारे पापफलों को नष्ट करने की शक्ति है, अत: जो भी इसे श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक सुनता है या सुनाता है, वह नरकभागी नहीं होता, चाहे उसे भौतिक शरीर मिला हो और चाहे वह कितना ही पापी क्यों न रहा हो। दरअसल, यमराज के आदेशों का पालन करने वाले यमदूत उसे आँख उठाकर देखने के लिए भी उसके पास नहीं जाते। अपना शरीर त्यागने के बाद वह भगवद्धाम लौट जाता है जहाँ उसका सादर स्वागत किया जाता है और पूजा की जाती है।**

**म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ।**
**अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥ ४९ ॥**

शब्दार्थ

म्रियमाणः—मृत्यु के समय; हरेः नाम—हरि का पवित्र नाम; गृणन्—उच्चारण करते हुए; पुत्र-उपचारितम्—अपने पुत्र की ओर इशारा करते; अजामिलः—अजामिल; अपि—तक; अगात्—गया; धाम—आध्यात्मिक जगत; किम् उत—क्या कहा जा सकता है; श्रद्धया—श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक; गृणन्—उच्चारण करते हुए।

**अजामिल ने मृत्यु के समय कष्ट भोगते हुए भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण किया और यद्यपि उसका यह उच्चारण उसके पुत्र की ओर लक्षित था फिर भी वह भगवद्धाम वापस गया। इसलिए यदि कोई श्रद्धापूर्वक तथा निरपराध भाव से भगवन्नाम का उच्चारण करता है, तो वह भगवान् के पास लौटेगा इसमें सन्देह कहाँ है?**

**तात्पर्य :** मृत्यु के समय मनुष्य निश्चित रूप से मोहग्रस्त हो जाता है, क्योंकि उसके शारीरिक कार्य अव्यवस्थित हो जाते हैं। उस समय, भले ही किसी ने अपने जीवन भर भगवन्नाम का कीर्तन करने का अभ्यास किया हो, किन्तु वह स्पष्ट रूप से हरे कृष्णमंत्र का उच्चारण न कर पाए। फिर भी ऐसे व्यक्ति को पवित्र नाम के कीर्तन का सारा लाभ मिलता है। इसलिए जब तक शरीर स्वस्थ है, क्यों न हम जोर-जोर से तथा स्पष्ट रूप से भगवन्नाम का कीर्तन करें? यदि कोई ऐसा करता है, तो यह सम्भव है कि मृत्यु के समय भी वह प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक भगवन्नाम का ठीक से कीर्तन कर सके। निष्कर्ष के रूप में, जो व्यक्ति निरन्तर भगवन्नाम का कीर्तन करता है उसकी भगद्धाम-वापसी बिना किसी सन्देह के सुनिश्चित है।

————

इस अध्याय पर पूरक टिप्पणी

इस अध्याय के श्लोक ९ तथा १० की श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा की गई टीका एक वार्तालाप के रूप में है कि किस तरह कोई भगवन्नाम का कीर्तन करने-मात्र से सारे पापफलों से मुक्त हो सकता है।

कोई कह सकता है, ''यह स्वीकार किया जा सकता है कि भगवन्नाम के कीर्तन से मनुष्य पापी जीवन के सारे फलों से मुक्त हो सकता है। किन्तु यदि कोई पूर्णचेतना में रहते हुए पापकर्म करता है, वह भी एक बार नहीं, अपितु अनेक बार, तो वह अपने को ऐसे पापों के फलों से मुक्त करने में अक्षम रहता है, चाहे उनके लिए उसने बारह या अधिक वर्षों तक प्रायश्चित्त क्यों न किया हो। तो फिर यह कैसे सम्भव है कि केवल एक बार भगवान् का नाम लेने से कोई तुरन्त ही ऐसे पापों के फलों से मुक्त हो जाता है?''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इसका उत्तर इस अध्याय के श्लोक ९ तथा १० का उद्धरण देते हुए कहते हैं, ''भगवान् विष्णु के पवित्र नाम का कीर्तन सोने या अन्य कीमती वस्तु की चोरी करने वाले, शराबी, मित्र या सम्बन्धी के साथ विश्वासघात करने वाले, ब्राह्मण के हत्यारे या अपने गुरु या अन्य गुरुजनों की पत्नी के साथ संभोग करने वाले के लिए प्रायश्चित्त की सर्वोत्तम विधि है। स्त्रियों, राजा या अपने पिता की हत्या करने वाले, गौवों का वध करने वाले तथा अन्य सभी पापी लोगों के लिए भी यह प्रायश्चित्त की सर्वोत्तम विधि है। भगवान् विष्णु के नाम का मात्र कीर्तन करने से ऐसे पापी व्यक्ति परम भगवान् का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं। अत: भगवान् यह सोचते हैं कि, ''चूँकि इस व्यक्ति ने मेरे पवित्र नाम का कीर्तन किया है, अत: उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।''

मनुष्य पापी जीवन के लिए प्रायश्चित्त कर सकता है और पवित्रनाम के कीर्तन से उसके सारे पापफल नष्ट हो सकते हैं, यद्यपि यह प्रायश्चित्त नहीं कहलाता। सामान्य प्रायश्चित्त पापी व्यक्ति को अस्थायी रूप से रक्षा प्रदान कर सकता है, किन्तु उसके हृदय में पापकर्म करने की जो जड़ें गहरे जमी हुई रहती हैं उनसे यह हृदय को स्वच्छ नहीं बना सकता। अतएव प्रायश्चित्त भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन जितना शक्तिशाली नहीं होता। शास्त्रों में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति केवल एक बार पवित्र नाम का उच्चारण करता है और भगवान् के चरणकमलों में पूर्ण शरण ले लेता है, तो भगवान् उसे अपना *अविभावी* मान लेते हैं और उसे सुरक्षा प्रदान करने के लिए उन्मुख रहते

हैं। इसकी पुष्टि श्रीधर स्वामी ने की है। इसलिए जब अजामिल यमराज के दूतों द्वारा ले जाये जाने के महान् खतरे में था, तो भगवान् ने तुरन्त ही उसकी रक्षा करने के लिए अपने निजी दूतों को भेजा। चूँकि अजामिल सारे पापफलों से मुक्त कर दिया गया था, इसलिए विष्णुदूत उसके पक्ष से बोले।

अजामिल ने अपने पुत्र का नाम नारायण रखा था और चूँकि वह अपने पुत्र को अत्यधिक चाहता था, अत: वह उसे बारम्बार पुकारता था। यद्यपि वह अपने पुत्र को बुलाता था, किन्तु यह नाम स्वयं पर्याप्त शक्तिशाली था, क्योंकि नारायण नाम परम भगवान् नारायण से भिन्न नहीं है। अजामिल ने जब अपने पुत्र का नाम नारायण रखा तभी उसके पापी जीवन के सारे फल निरस्त हो गये थे और चूँकि वह अपने पुत्र को पुकारता रहता था जिससे वह नारायण के नाम का हजारों बार उच्चारण करता था, अत: अनजाने में वह कृष्णभावनामृत में प्रगति कर रहा था।

कोई यह तर्क कर सकता है, ''चूँकि वह निरन्तर नारायण नाम का उच्चारण कर रहा था, तो फिर उसके लिए एक वेश्या की संगति करना तथा शराब के विषय में सोचना कैसे सम्भव हुआ?'' अपने पापकर्मों के द्वारा वह बारम्बार अपने ऊपर कष्ट लादता जा रहा था, इसलिए यह कहा जा सकता है कि उसके मुक्त होने का कारण था उसके द्वारा नारायण का उच्चारण। किन्तु तब उसका उच्चारण करना *नाम अपराध* हुआ होता। *नामो बलाद् यस्य हि पापबुद्धि:*—जो व्यक्ति पापकर्म करता रहता है और भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करके अपने पापों को निरस्त करना चाहता है, वह *नामापराधी* है। इसके प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि अजामिल द्वारा नाम लिया जाना निरपराध था, क्योंकि वह अपने पापों के निवारणार्थ नारायण नाम का उच्चारण नहीं करता था। वह यह नहीं जानता था कि वह पापकर्मों में लिप्त है, न ही वह यह जानता था कि नारायण का नाम लेने से वह पापों को निरस्त कर रहा है। इस तरह उसने नाम अपराध नहीं किया और अपने पुत्र को बुलाते समय उसके द्वारा नारायण नाम का बारम्बार लिया जाना शुद्ध कीर्तन (उच्चारण) ही कहा जा सकता है। इस शुद्ध उच्चारण के कारण अजामिल भक्ति के फलों

को अनजाने संचित करता रहा। दरअसल, उसके जीवन के सारे पापफलों को निरस्त करने के लिए उसके द्वारा पवित्र नाम का पहला उच्चारण ही पर्याप्त होता। यहाँ पर एक नीतिशास्त्र का उदाहरण उद्धृत किया जा सकता है। अंजीर के वृक्ष में तुरन्त फल नहीं लगते, किन्तु समय आने पर फल प्राप्त होते हैं। इसी तरह अजामिल की भक्ति रंच रंच करके बढ़ी, अत: अत्यन्त पापकर्म करने पर भी वे फल उसे प्रभावित नहीं कर सके। शास्त्रों में कहा गया है कि यदि कोई भगवान् के नाम का एक बार भी उच्चारण करता है, तो उसे भूत, वर्तमान या भावी पापमय जीवन के फल प्रभावित नहीं करते। एक अन्य उदाहरण दिया जा सकता है। यदि कोई सर्प के विषदन्त निकाल ले तो भविष्य में यह साँप जिसे शिकार बनायेगा उसे विष नहीं व्यापेगा, भले ही यह सर्प उसे बारंबार क्यों न काटे। इसी तरह यदि कोई भक्त निरपराध होकर एक बार भी पवित्रनाम का उच्चारण करता है, तो उससे उसकी शाश्वत रक्षा होती है। उसे उच्चारण करने के फल के यथासमय परिपक्व होने की केवल प्रतीक्षा करनी होती है।

*इस प्रकार श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कन्ध के अन्तर्गत ''विष्णुदूतों द्वारा अजामिल का उद्धार'' नामक द्वितीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य समाप्त हुए।*